॥ ओ३म् ॥

। सत्यमेव जयते नानृतं ।

। समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति ।



जैनमत समीक्षा

अर्थात्

जिनाचार्यकृत ग्रन्थों का याथातथ्य दृश्य

पं० शम्भुदत्त शर्मा, उपदेशक

आ० प्र० सभा पञ्जाब से प्रणीत ।

जिसको

लाला रामकृष्ण अग्रवाल ने

ऐंग्लो-संस्कृत यन्त्रालय लाहौर में छपवाया ।

प्रथमवार १०००] [मूल्य ।)

ओ३म्

॥ अथ भूमिका ॥

सम्पूर्ण सज्जन व पाठक वृन्द को विदित हो, कि यद्यपि मुझे कई एक अत्यावश्यकीय काम थे, तथापि जिस प्रकार महान् कामों की उपस्थिति में यदि कोई अपने यहां सुमान्य प्रतिष्ठित जन आजावे, तो उसका यथोचित सत्कार करना ही पड़ता है, तदनुसार ही यदि अपने से कोई पुरुष कुछ बात पूछे, तो उसका उसे उत्तर देना भी सर्व कार्यों से परम श्रेय है, इस न्याय से मुझे यह उत्तर लिखना ही पड़ा, क्योंकि आज कल जैन मतावलम्बियों ने आर्यसमाजों की ओर सङ्केत (इशारा) कर प्रकट रूप से कहा, और लिख रहे हैं, कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने हमें (जैनियों को) बौद्ध और चार्वाक् तथा वाममार्गादि से अभिन्न क्यों लिखा है, मुझे अति आश्चर्य है, कि यदि जैन जन निज पुस्तकों को देखते व पढ़ते, तो उन्हें स्वयं ज्ञात हो जाता, कि हां सत्यार्थ प्रकाश में सत्य लेख है, यद्यपि मुझे भी भ्रम हो गया था, कि स्वामी जी ने इन्हें बौद्ध चार्वाक् व वाममार्गादि मत से क्यों माना है, तब मैंने जैन ग्रन्थों का देखना आरम्भ किया, कि देखूं यह बात कहां तक सत्य है, जब जैन ग्रन्थों को देखा, तो आंखें खुल गईं, कि यह

तो मतनजे की खिचड़ीवत् ही है, क्योंकि इसका रूप समय बदलते बदलते हो पाया, और यह एक रस किसी समय में भी नहीं रहा किन्तु समय २ पर इसके सिद्धान्तों में उलट पुलट होचुका है, वर्तमान समयसे अब अनुमान १४०० वर्ष पूर्व से जैनाचार्यों ने पहिली रङ्गति से एक निराले रङ्ग की रङ्गति अपनी पृथक् करली है, कि जो अब वर्तमान जैन सिद्धान्तों में प्रस्तुत है, कि जिसका रचयिता स्कन्दलाचार्य हुआ है, इत्यादि अनेक जैन सिद्धान्तों के पुस्तक देखे, कि जिन से प्रतिबोध हुआ कि स्वामी जी का लेख सब सत्य है॥

जब जैनाचार्य ही स्वयं स्वसिद्धान्तों से प्रकट करते हैं, कि पुराणी किरानी कुरानी इत्यादि सब हम से पृथक् होते गये हैं, किन्तु सबों की मूल हम ही हैं, कि जिससे सारे श्रोत प्रोत होरहे हैं॥

पाठक वर्ग! इतना ही इनका लेख नहीं है, किन्तु इनके लेख से तो अन्य संसार में जितने निन्दित कर्म हैं, उनके भी प्रचार कर्ता जैन ही हैं, और इनका बौद्ध तथा चार्वाक् व वाममार्ग से सम्मिलित होना तो कुछ बात ही नहीं है, यह तो एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं, प्रत्युत मूर्तिपूजा, मद्य, मांस, व्यभिचार, तथा अनेक कुकर्म, जैसे कि मटकना, सिसकना, पुरुष रण्डियों के वेष कर नाचना, ताल बजाना, तथा निर्दयता यहां तक कि जैसी

किसी पाषाण हृदय में भी न होगी, इत्यादि बातें जैन मत में ही प्रचलित हुई हैं मैं कहां तक लिखूं, जैनियों ने सत्य से नरक, और असत्य कर्मों से स्वर्ग तथा माता पिता को महान् कष्ट देना अत्युत्तम माना है, जैसे कि वर्तमान समय में अशिक्षित विद्या बुद्धिशून्य जन करते हैं, याथातथ्य (ज्यों का त्यों) ऐसा ही लेख जैनाचार्यों ने निज २ पुस्तकों में लिखा है ॥

जैन महाशय! इस इतने लेख को ही पढ़कर न अशान्त (जामा से बाहर) हूजिये, किन्तु धैर्यता के साथ इस सम्पूर्ण पुस्तक को देखिये, तब आप को स्वयं बोध हो जायगा, कि इस ग्रन्थ कर्ता का कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि इसने सब जैन ग्रन्थानुसार (सहित उन२ ग्रन्थों के नाम कि जिन का इस में लेख है, तथा उन ग्रन्थों के पृष्ठादिकों का पता ठीक २) लिखा है, कि जिस में जैनों को साक्षी जैनाचार्य हो मिलें, इत्यादि लेख विशेष है, इस लिये इसे कई भागों में विभक्त किया है, कि जिसका यह प्रथम भाग (१ ईंक) है, अवशेष जैन सर्वज्ञत्व, द्वितीय, तृतीय, तथा चतुर्थादि भागों के छपने पर सब को विदित होगा। विशेषार्थ—भवदीय शम्भुदत्त शर्मा ॥

ओ३म्

केतकी करील कहां, आम वृक्ष नीम कहां,
    कारर कपूर सम नहीं तीन काल है।
कहां चन्द्र उजियारी, कहां निश अँधियारी,
    कहां नृप छत्र धारी, कहां कङ्गाल है।
लसन की गन्ध नहीं मृग मद के तुल्य होय,
    पीतल कनक कहां, विद्यावान् बाल है।
कहां आक विष दुग्ध कहां धेनु स्वादु दूध,
    कहां गज खर, कहां काक व मराल है।
कहां गर्भ वासी देहधारी अरहन्त जिन,
    कहां सर्वव्यापी जन्मरहित अकाल है।
कहां कामी क्रोधी हठी मानी अहङ्कारी तुच्छ,
    कहां जग कर्ता धर्ता हर्ता महीपाल है।
कहां कोक मिथ्या ज्ञान, कहां वेद निरवान,
    कहां अन्ध नेत्र युक्त सत्य कहां जाल है।
कहां बकवादी पक्षपाती मांस भक्षी मूढ़,
    बुद्धिके विरोधी कहां गुणधी विशाल है॥१॥

प्रिय पाठक वृन्द! महाभारत के पश्चात् जिस दिन से वैदिक धर्म को भारत वासियों ने त्यागा है, उसी दिन से इन को नित्य अनेक प्रकार के नवीनातिनवीन कष्ट होते रहे, और तज्जन्य उनका अति घोर रूप से दुःसह

दुःख भी सहन करते रहे हैं, यद्यपि अनेक वार विद्वानों ने परस्पर प्रीति पूर्वक प्रेम (मिलाप) भी करना चाहा, परन्तु बकौले कि, "मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों २ दवाकी" अर्थात् जब रोगी को निज रोग के विरुद्ध औषधी मिलती है तो उसका रोग क्यों कर निर्मूल होसक्ता है, जो २ रोग भारत सन्तान को वैदिक धर्म्म त्यागने से उत्पन्न हुए हैं, वह २ जब तक कि वैदिकधर्म्म पुनः न ग्रहण किया जाये तब तक वह किस प्रकार नीरोग होसकते हैं, चाहे कोई कितना ही उपाय क्यों न करे। भारतवासियों को नास्तिकता के ज्वर ने ऐसा अचेष्टित (वेहोश) कर दिया है, कि यदि कोई महर्षि दया करके सुमार्ग पर लाना चाहता है, उस कृतज्ञता के प्रतिफल में उसे धन्यवाद तो कहां, किन्तु बुरा भला कहने लगते हैं, इत्यादि बातों से स्पष्ट विदित होता है, कि अभी भारतवासियों को कुछ और भी कष्ट उठाना होगा, इनकी दशा दयाके योग्य है ॥

हे परमदेव परमात्मा ! इन पर अपनी करुणा रूपी दृष्टि अति शीघ्र कीजिये, क्योंकि इनकी वर्तमान समय में मदोन्मत्त बुद्धि होरही है, अतः इन्हें अपना विश्वास देकर विश्वासी बनाइये, अविद्यान्धकार जो इनके हृदय में घोर रूप होकर विस्तृत होरहा है, उसको पृथक् करके वैदिक धर्म रूप सूर्य्य का विकाश कीजिये, जिससे कि सत्य सनातन अहिंसा वैदिकधर्म समस्त भूमण्डल

पर प्रचलित होजाय, और हमारे अन्य समस्त भारत-वासियों के सर्व दुःख दूर हों, तथा परस्पर में एक दूसरे की सहायता कर सकें ॥

हे दयानिधे ! आप हमको हमारे प्राचीन पुरुषों के समान साहस और तेज प्रदान कीजिये, तथाच हमको और हमारी सन्तानों को सत्यवादी सदाचारी परोपकारी आस्तिक और निरालसी बनाइये ॥

यह तो मैं प्रथम ही प्रकाश करचुका हूं कि मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि किसी के चित्त को दुखाया जाये, किन्तु मेरा तो यह तात्पर्य्य है कि सत्य का ग्रहण एवं असत्य और पाखण्ड का पोल दिखलाकर अपने सजातीय भ्राताओं को जैन रूप अन्धकूप में जो समस्त अवगुणाकर है गिरने से बचाऊं, इसमें किसी प्रकार का पक्षपात नहीं कियागया है, क्योंकि मुझे जैन धर्म से कुछ द्वेषता और वैदिक धर्म से कुछ पक्ष नहीं है, इसलिये मैं अपने जैनी भाइयों का ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूं कि यदि आप सर्व इस ग्रन्थ को निरपक्ष बुद्धि से बिचारेंगे तो आप सबको यह स्वयं भान होजायगा कि ग्रन्थ कर्ता का लेख सर्वथा सत्य है ॥

श्रीमान् परमहंस परिव्राजकाचार्य्य परमयोगी बाल ब्रह्मचारी महर्षि स्वामी श्री १०८ दयानन्द सरस्वतीजी के सत्य सत्यार्थ को देखकर बहुत से भोले जैनी भ्राताओं ने

चारों ओर से उच्चैः स्वर पूर्वक घोषण करना (कोलाहल मचाना) आरम्भ किया, और इस बात से विद्याहीन जैनी अत्यन्त क्रुद्ध हुए कि हमको उपरोक्त स्वामी जी ने बौद्ध चार्वाक् मतानुयायियों में क्यों सम्मिलित किया है, परन्तु यदि वे निज ग्रन्थों को पढ़ते व देखते तो स्वयं ज्ञात हो जाता कि हम बौद्ध और चार्वाक् तो क्या, किन्तु वाम-मार्गियों को भी मूल हैं॥

यह बौद्ध और चार्वाक् तो एक मूल की दो शाखा हैं, यद्यपि एक वृक्ष के ऊपर जाकर दो टहने होजाते हैं, और फिर उन टहने में बहुत टहनी पत्ते फूल फल होते हैं, तथापि वह एकही वृक्ष कहलाता है, इसलिये बौद्ध और चार्वाक् जैन से पृथक् कभी नहीं होसक्ते, प्रत्युत बौद्ध शिक्षा से ही जैन मत बोलने के योग्य हुआ है, बौद्ध सिद्धान्तों ही को लेकर आप सबों (जैनियों) ने अपने वास्तविक रूप को छिपाया है और बौद्ध ही का नाम महावीर अरहन्त प्राचीन जैनी विद्वान् मानते रहे हैं, *देखो अमरसिंह जैनी ने भी गौतम बौद्ध और महावीर* तीर्थङ्कर को एक ही माना है—देखो अमरकोष काण्ड १ वर्ग १ श्लो० ८ से १० पर्य्यन्त—यतः जैसे कि—

सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।

समन्तभद्रो भगवान् मारजिल्लोकजिज्जिनः॥

षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीन्द्रः श्रीघनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः ॥
स शाक्यसिंहः सर्वार्थसिद्धश्शौद्धोदनिश्च सः।
गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः ॥

ये सर्व नाम महावीर तीर्थङ्कर के ही हैं, इसलिये गौतम बुद्ध शाक्यमुनि या शाक्यसिंह एकही हैं। राजा शिव प्रसाद जैनी ने भी अपने इतिहास तिमिरनाशक में महावीर तीर्थङ्कर और गौतम बुद्ध को एक ही माना है, देखो इतिहास तिमिरनाशक तृतीय भाग पृष्ठ १३ सन् १८७७ ई० इलाहाबाद गवर्नमेण्ट के प्रेस की छपी।

जैन बौद्ध से कदापि पृथक् नहीं होसके, बौद्ध मत जिसको अशोक और सम्प्रति महाराज ने माना, जैन उस से पृथक् किसी प्रकार नहीं होसके, जिन जिस से जैन, और बुद्ध जिस से बौद्ध निकला है, यह दोनों पर्याय वाची शब्द हैं, कोश में दोनों का अर्थ एकही लिखा है, गौतम को दोनों मानते हैं, वर्ष दीपावंश इत्यादि पुरान बौद्ध ग्रन्थों में शाक्य मुनि गौतम बुद्ध को प्रायः महावीर के ही नाम से लिखा है, इस से विदित हुआ कि उनके समय में उनका एकही मत रहा होगा जिस प्रकार कुछ दूर चलकर एक नदी की दो धारें होजाती हैं, एक पश्चिम गई एक पूर्व, इसी प्रकार समय पाकर आचार

विचार में भेद पड़ने से एक मत के दो मत अर्थात् बौद्ध और जैन होगये, यह अपने निश्चय की बात है कि बृहत् धारा (बड़ी धार) को चाहे पश्चिम वाली धारा के नाम से पुकारो चाहे पूर्व वाली के नाम से बात एकही है, जब उसको मूल दोनों ने एकही मानी और तटस्थ के गांव भी दोनों ने एकही माने, तो पुनः उसके और २ विशेषणों में भेद रहने से वह धारा नहीं बदल सकी, हमने जो जैन न लिखकर गौतम के मत वालों को बौद्ध लिखा उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उनको दूसरे देश वालों ने बौद्ध ही के नाम से लिखा है जो हम जैनी के नाम से लिखें, तो बड़ा भ्रम पड़ जायगा इत्यादि देखो इतिहास तिमिर नाशक ॥

अमति गत्याचार्य्य जैनी (जिसको उसी के ग्रन्थ से अनुमान करने से ६०० वर्ष हुए) लिखता है, और जिस धर्म परीक्षा को पन्नालाल बाकलीवाल दिगम्बरी जैनी ने सन् १६०१ ई० में अनुवाद करके बम्बई जैन हितैषी पुस्तकालय कर्नाटक प्रेस में छपाया है, उसके १५८ पृष्ट में लिखा है ॥

शिष्यः श्रीपार्श्वनाथस्य विदधे बुद्धदर्शनम् ।

अर्थात् पार्श्वनाथ के शिष्य ने बौद्ध धर्म को चलाया, (महावीर का ही नाम पार्श्वनाथ भी था) क्योंकि जैनी बौद्ध से २५० वर्ष प्रथम पार्श्वनाथ का होना बताते हैं,

तो उसका शिष्य किसी प्रकार बौद्ध धर्म का नेता (ज्ञानी) नहीं हो सक्ता; इस लिये पार्श्वनाथ भी गौतम बुद्ध के ही नाम से कहा जाता था, लंका के बौद्ध गौतम महावीर की मूर्ति पार्श्वनाथ के सदृश सांप के फण सहित मानते हैं और उसको जिन भगवान् कहते हैं उसीको पार्श्वनाथ यानि सांप वाला नाथ नाम जैनियों ने रख लिया है और उसके शिष्य मगध देश के राजा बिम्बसार ने जैन पुस्तकों के अनुसार जैनमत, और बौद्ध पुस्तकों के अनुसार बौद्ध मत प्रचलित किया, जैनी उसको श्रेणिक नाम से पुकारते हैं, इससे भी मुख्यतया विदित हुआ कि जैन और बौद्ध एक ही हैं। पुन: जैनीजन स्वामी दयानन्द जी महाराज के इस लेख से कि जैन बौद्ध एक हैं, क्यों बुरा मानते हैं, और इस बात को तो जैनी भी स्वत: मानते हैं, कि चार्वाकादि बौद्ध की शाखा है, जैनी कितना ही वाम-मार्ग और बौद्ध तथा चार्वाकादिकों से पृथक् होने का उद्यम करें सब निष्फल है, और जैन सिद्धान्तों से स्पष्ट प्रकट है, कि वाममार्ग का मूल जैन मत ही है, परन्तु समय के परिवर्तनरूप चक्र से जैनमत पर रङ्ग२ के खोल चढ़ते चले आये, और वर्तमान जैनमत के परिवर्तन का हेतु मुख्य स्कन्दलाचार्य हुआ है, उस के पीछे भी कई वार जैन सिद्धान्तों का जैनाचार्यों ने निज २ बुद्ध्यनुकूल परिवर्तन किया है, जिसको हम आगे लिखेंगे॥

जैनियों की ओर से महर्षि दयानन्द जी को विचार शून्य नङ्गानुयायी जैनियों ने अपनी पुरानी मर्यादानुकूल खूब ही बेतु की उड़ाई है, और कोई पार्श्व (पहलू) ऐसा न छोड़ा, जिस में सभ्यता का अभाव न हो, और सभ्यता का खून न किया गया हो, इन असम्भव पुस्तकों के लिखने और छापने से नष्टबुद्धि जैनी तो निज चित्त में अतिहर्ष समझते हैं, परन्तु अन्य मतों के विद्वान् ऐसी पुस्तकों को विष्ठा के समान घृणा करके त्याग देते हैं॥

ओ३म्

एक नंग आमनाइ धूर्तने साधारण अविवेकी पुरुषों को धोका देने के अभिप्राय से बिना प्राप्त हो निज कल्पना अनुसार अपने नाम की दुम में उपाधियों का लम्बा पनछल्ला लगा स्वामी दयानन्द और आर्य्यसमाजों पर सीठनों की बोछाड़ की इस कषाइ के हृदय को कषाय की अग्नि ने इतना जलाया है जिस कुल में महर्षि पैदा हुये थे उस कुल तक को इसने कोस डाला। कहलावत है कि कागों के कोसे से प्राणियों की क्या हानी यानि अवटीच कुल की कुलीनता एक दुराचारी अज्ञानी के कहने से घट नहीं सकती लेकिन हमको इस बात पर हंसी आती है कि यह वर्णोच्चारणशिक्षा तक भी नहीं जानता और अपने आपको परमविद्वान् लिखता है इस लिये इसी के लेख से जैन मत का मोक्ष साक्षात्कार होता है कि जिस

तरह से इस परम मूर्ख ने अपना नाम परम विद्वान् रख लिया है इसी तरह से केवल अज्ञानियों में जैनाचार्य्यों ने केवल ज्ञानियों की कल्पना करली है यदि मुझे समय मिला तो मैं इस परम अविद्वान् की अविद्या और अनाचार से पबलिक को खबरदार करूंगा लेकिन यहां यह प्रकरण मुनासिब नहीं मालूम होता है क्योंकि यह किसी खास पुरुष का जीवन चरित्र नहीं है ॥

हां! अलबत्ता जैनियों की ओर से उन बातों के उत्तर छपने चाहियें थे, जो स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने सत्यार्थप्रकाश में जैन ग्रन्थों के प्रमाणानुसार जैन सिद्धान्तों की समीक्षा की है, और जैन शास्त्रों की पोल दिखाई है, आज तक कोई पुस्तक जैनियों की ओर से अपने उन कलङ्कों के धोने के लिये नहीं निकला, क्योंकि जैनियों का काम था, कि स्वामी जी के उन लेखों का उत्तर देते, परन्तु ऐसा न करके कमीनापन और फक्कड़बाजी को काम में लाया गया है, स्वामी दयानन्द जी पर इस प्रकार सीठनों (गालियों) की बोछाड़ की है, जिस प्रकार हमारे हिन्दू और जैनी भाइयों की स्त्रियां विवाह में करती हैं ॥

भाइयो! सत्यार्थ प्रकाश को देखकर ही क्रोध मत करो, द्वेषाग्नि को शमन करके विचार सहित आद्योपान्त पढ़ो, क्रोधको थूक दो, न्याय को काम में लाओ, विचार-

शक्ति बढाओ, हठ धर्म से हटो, सोचो, समझो, यदि आप की समझ में न आवे, तो किसी विद्वान् से ज्ञात करो, यदि हठवशात् आप कुछ भी नहीं कर सक्ते हो, और तुम्हें यही आग्रह है, कि जैनमत ही सत्य है, तो आप सम्पूर्ण जैनियों की ओर से एक सभा (कमेटी) नियत करो, और उन सब में से प्रतिनिधि बनाओ, उसके सङ्ग प्रेम पूर्वक परस्पर बैठकर शास्त्रार्थ करो, अन्य मतावलम्बियों के विद्वानों को न्यायाधीश करो, न्याय युक्ति प्रमाण और बुद्धि को लेकर निर्णय करने के पश्चात् पुन: जिसका पक्ष गिर जावे, वह दूसरे पक्ष को प्रेम पूर्वक स्वीकार करे, वृथा विललाप करने और भांडों की नकलों के सदृश पुस्तकों के छपाने आदि से कोई भी अच्छा न मानेगा, और न कोई यह कहेगा, कि आर्यसमाज की ओर से किये हुए प्रश्नों का उत्तर यथावत् दे दिया गया है, या वाममार्ग तथा चार्वाक् और बौद्ध से अलग करके जैनमत को पृथक् ठहराया हो, स्वामी दयानन्द जी को कुछ जैनियों से शत्रुता नहीं थी, केवल परोपकारार्थ तुम को इस भयानक वाममार्ग नास्तिक जैन मत से उन्होंने तो निकालना चाहा था, परन्तु जिसके शिर पर भावी रूप कष्ट आन उपस्थित होता है, उसे दूसरे का उपदेश श्रेष्ठ नहीं लगता, तुम भारतसन्तान होकर भी ऐसी घोर निद्रा में शयन कर रहे हो, कि निरपक्ष होकर सत्यासत्य के निर्णय करने में सर्वथा असमर्थ हो गये हो,

अब इस निद्रा का त्याग कर सत्य का ग्रहण करो, उठो विलम्ब का समय नहीं है. ऐसे हठ धर्म से आप बचो, और अपनी सन्तानों को बचाओ, एवं असत्य के त्याग में सदा उद्यत रहो, स्वामी दयानन्द जी को धन्यवाद दो, कि जिन्होंने ऐसे समय में तुम्हें चेतना कराई है, कि जिस में आप सब सम्भल जांय, इन बातोंका सर्वथा त्याग करो कि महर्षि के पश्चात् अनेक धूर्तों ने भारतभास्कर को अस्त हुआ देखकर चारों ओर से अपनी २ कूक लगानी आरम्भ की, यहां तक कि जिनको विद्या का नाम केवल परीक्षोत्तर शून्य ही मिलता है, और जिनको लिखने में काला अक्षर भैंस बराबर दृष्टि आता है, उन्होंने भी अपनी नामवरी के लिये किसी को कुछ दे दिलाकर आर्य्यसमाज के विरुद्ध पुस्तक छपाने के रोग ने घेर लिया अनेकों ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और आर्य्यसमाज को गाली दे २ कोस २ हो कर हृदय शीतल किया है, अनेकों ने राज्य द्वारा अपना मन माना अभिमान (अरमान) निकाला, न्यायालय (अदालत) में निज मन माना निवेदन पत्र (दावा) प्रवेश किया, व्यर्थ असत्य कलङ्क लगाये, तात्पर्य यह है कि जो २ न करना था, सो २ सब कर दिखाया, और अब तक करते ही चले जा रहे हैं, सत्य की सदा जय हुआ करती है अन्ततोगत्वा सबों ने पराजय पाया, अपने २ मत की निर्बलता से शास्त्रार्थ करने से टालमटोल ही करते रहे, आत्मारामादि अनेक

जैनियों ने वेदों के ऊपर कुतर्क रूप सङ्केत (रिमार्क) करते हुए मोक्षमूलर और विलसनादि मांसाहारियों की उच्छिष्ट पान की, अर्थात् चाबे हुए को भी दुबारा चबाया, और चार सवारों में पांचवां सवार बनना चाहा जिस प्रकार कि चार सिपाही घोड़ों पर सवार हुए चले जा रहे थे, जब ग्राम के निकट पहुंचे, तो एक गधे वाला सवार भी उसी मार्ग पर चला जा रहा था, उसने अपने गधे को भी उन सवारों के पीछे लगा दिया, जब कोई उनसे पूछता था, कि सवारो आप सब किधर से आये हो, तो गधे वाला सब से प्रथम उत्तर दे देता था, कि हम पांचों सवार अमुक स्थान से आये हैं, इत्यादि भला जो अङ्गरेज़ कि जो पुनर्जन्म को नहीं मानते और मांसाहारी हैं, और सृष्टि की उत्पत्ति केवल अनुमान से ५००० वर्ष से ही मानते हैं, वह आगम (वेदों) के अर्थ यथार्थ कैसे जान सक्ते हैं। दूसरे किसी यूरुप निवासी ने वेद भाष्य नहीं किया, केवल सायणाचार्य्य और महीधर जो पुरानी चाल व फैशन के जैनी ही थे नुकतेचीनी वैदिकधर्म पर की है, यहां पर कदाचित् यह कोई शङ्का करे, कि महीधर और सायण को जैनी क्योंकर कहा। तो इसका कारण यह है कि पुराणों की असम्भव बातों को देखकर पुराणों से घृणा करके शीघ्र ही बुद्धिमान् जन जैनी हो गये थे, और वेदों का भाष्य भी इसी मूल को लेकर बनाया गया है अब विचार करो

जहां पर ऐसा प्रबल कपट का संचार है, वहां न्यायाङ्कुर कैसे हो सक्ता है, जब जैनियों ने वेदों के टीका में हो असम्भव २ बातों का आशय दर्शाया है, तो अन्य ग्रन्थ किस बाग़ की मूली हैं ॥

आज कल बहुत से अनभिज्ञ जन यज्ञादिकों में मांस विधान वेदानुकूल कह देते हैं, और यह भी कहते हैं कि स्वामी दयानन्द जी से प्रथम यज्ञों में मांस का खण्डन किसी ने नहीं किया, और न उनका भाष्य ही ठीक है, यह कहना उनकी अल्पज्ञता है, क्योंकि महर्षि दयानन्द जी ने जो वेदों का भाष्य किया है, और जो महीधरादि पुराने जैनियों ने भाष्य किया है, उसका साक्षात्कार (मुकाबला) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में दिखलाया गया है, जिस विद्वान् को परीक्षा करना अभीष्ट हो, कर सक्ता है, केवल यह कह देना कि स्वामी दयानन्द जी का वेदार्थ योग्य नहीं है, इस में वह क्या प्रमाण रखता है, किन्तु यह उनका हठधर्मपन है, क्योंकि स्वामी जी के भाष्य की आज तक किसी पुरानी या किसी पश्चिमी दुनियां के संस्कृतज्ञ विद्वानों ने कोई व्याकरणादिकों से अशुद्धि नहीं दिखलाई और उनका ऐसा कह देना भी योग्य नहीं कि वेदों में हिंसा है, क्योंकि यज्ञ का कर्तव्य मुख्य वायु शुद्धि है, ऐसा शतपथादि अनेक ग्रन्थों में लिखा है, मांस को यज्ञ में डालने से वायु विकार को प्राप्त होता है इस लिये यह प्रत्यक्ष असत्य है, कि यज्ञ में मांस का

विधान है, दूसरे स्वामी दयानन्द जी से प्रथम गौतम बुद्ध भी कहचुके हैं कि वेदों में हिंसा नहीं है ॥

जो वेदों का ऐसा अर्थ करते हैं कि बलिदान करना या हिंसा करना लिखा है, यह उनका कहना बालपन है, प्राचीन ब्राह्मण और राजा वेदों में हिंसा नहीं बतलाते और न बलिदान करते थे, जबसे राजा व्यभिचारी और मांसाहारी हुए हैं, तब से उन्होंने यज्ञों में पशुबध करना प्रारम्भ किया है, परन्तु वेदों में हिंसा करने का विधान कदापि नहीं है, देखो बौद्ध जीवन चरित्र अङ्गरेजी महाभारत में जिसको अनुमान ५००० वर्ष के होते हैं लिखा है ॥ महाभा० शां० अ० २६४ श्लो० १ ॥

सुरामत्स्याः पशोर्मांसं द्विजादीनां बलिस्तथा ।
धूर्तैः प्रवर्तितंयज्ञे, नैतद्वेदेषु कथ्यते ॥

आश्वलायन गृह्य सूत्र अ० १ खण्ड ८ सूत्र ८ में लिखा है कि—होमायच आसवर्ज्यः

कात्यायन जी भी लिखते हैं, कि—

आहवनीयमा॰ सम्भृतिवेधः ।

अर्थात् हवन की सामग्री में मांस मिश्रित नहीं करना चाहिये। मनुजी लिखते हैं, अ०११ श्लो० ९५ में:

यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ।

अर्थात् यक्ष राक्षस और पिशाचों का मद्य मांस सुरा आसवादि आहार है, अतः इन द्रव्यों को देव ब्राह्मण

यज्ञ कर्तादि श्रेष्ठ जन स्पर्श तक नहीं करते, तो यज्ञ जो कि सबका सुखद है, उस में किस प्रकार दुर्द्रव्य डालकर दुःख द्वार बनाया जावे, इसी हेतु से यज्ञों की हवि में मांसादि उपरोक्त द्रव्यों का निषेध किया गया है॥

अहिंसयैवभूतानां, कार्यंश्रेयोऽनुशासनम्।
वाक्चैवमधुराश्लक्ष्णा, प्रयोज्याधर्ममिच्छता॥
यस्यवाङ्मनसीशुद्धे, सम्यग्गुप्तेच सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति, वेदान्तोपगतं फलम्॥

मनुः अ० २ श्लो० १५९। १६०॥

श्रेष्ठ विद्वानों को योग्य है कि प्राणीमात्र को हिंसा न करें, धर्म की इच्छा करने वाला मधुरवाक् और स्पष्टता युक्त सर्व हित उपदेश वेदानुकूल करें। जिस मनुष्य के वाणी और मन शुद्ध और (क्रोध मिथ्या भाषणादिकों से) सुरक्षित हों, वह वेदान्त तथा वेदों के सिद्धान्त रूप अर्थ को पाता है॥

भ्रातावरो! यह न जानो, कि यज्ञ के द्रव्य में मांस डालने वाला वा यज्ञ से भिन्न मांस भक्षी जन को ही पातक लगता है, किन्तु इन आठ जनों को पातक लगता है ऐसा हमारे मुख्योपदेशक महाराज मनु जी कहते हैं कि जैसे— (मनु अ० ५ श्लो० ५१)

अनुमन्ता विशसिता, निहन्ता क्रयविक्रयी।

संस्कर्ता चोपहर्ता च, खादकश्चेति घातकाः ॥

मांस विषय की अनुमति (सलाह) देने वाला १। आज्ञा देने वाला २। काटने वाला ३। खरीदने वाला ४। बेचने वाला ५। बनाने—पकाने वाला ६। परोसने वाला ७। और खाने वाला यह ८ पातकी हैं॥

जब मन्वादि धर्म शास्त्रकारों ने अहिंसा पर इतना बल दिया है और यज्ञों में भी हिंसा का निषेध किया है, तब वेदों में हिंसा तथा मादक द्रव्यों का होना कैसे हो सक्ता है, इस पर यदि कोई यह प्रश्न करे कि मनु में तो "न मांसभक्षणे दोषो" इत्यादि श्लोक भी है, तो इस पर तो आप भी स्वयं न्याय कर सक्ते हैं कि जब मांस (हिंसा) के विषय में अनुमति देने वाले को भी पातकी कह चुके हैं, तो भला वही मनु "न मांसभक्षणे दोषो" इत्यादि वाक्य किस प्रकार निज वाणी से निकल सक्ते हैं, इस न्याय से तो यह बात सिद्ध हुई कि किसी धूर्त अविवेकी विधर्मी ने यह नवीन श्लोक बनाकर मनु में सम्मिलित कर दिये हैं॥

यूनानियों का प्राचीन लेख भारत वासियों के विषय में॥

प्रथम भारत वासी जन महाराज मनु जीके अनुसार चलते थे, और आज पर्य्यन्त जिन २ देशों में हमारा

गमनागमन हुआ है, उन २ देशों से भारतवासी ही बल में अग्रगण्य, प्रण के पूरक, तथापि प्रेमी हैं, इनके हृदय चञ्चलता भिन्न गम्भीर स्वभाव वाले तथा व्यवहार (चाल चलन) में साधारण न्यायशीलता में विख्यात हैं, और न्यायालय (अदालत) में जाना उचित नहीं समझते, तथा मद्यादि से अति घृणा करते हैं देखो मुख़्तसिर तारीख़ हिन्द पृष्ठ ३५—इस लेख से भी विदित हुआ, कि उस समय तक (कि जब यूनानियों ने यह लेख लिखा था) मनु में मांस मद्य मैथुनादि व्यभिचार प्रवर्तक श्लोक नहीं थे, किन्तु पश्चात् में किसी दुर्व्यसनी ने लिखकर मिला दिये हैं, जब विदेशीजन भी इस प्रकार उपमा कर चुके, तो पुनः अब और प्रमाण देने की आवश्यक्ता नहीं समझता हूँ ॥

वेदविषय में जैन पुस्तकों का प्रमाण ॥

क्षीर कदम्ब जैनी उपाध्याय का पुत्र पर्वत नामक जैनी ने अपने पिता के मरणोपरान्त ऋग्वेद की श्रुति का ऐसा अर्थ किया। जैन पुस्तकों में श्रुति का नाम "अजैष्ट-व्यम्" है, इसका अर्थ उसने बकरे का बध करना बतलाया यद्यपि यथार्थ में यह उसका अर्थ नहीं था, किन्तु पुराने यव (जौ) वा कुटे हुए जौ यह उचित अर्थ है, जो कि हवन की सामग्री में पड़ते हैं, इस (श्रुति के अर्थ) पर एक जैनी और क्षीर कदम्ब के पुत्र पर्वत का शास्त्रार्थ

हुआ, और वह दोनों जैनी राजावसु के यहां न्यायार्थ गये, परन्तु वसु ने किसी कारण से पर्वत का असत्य पक्ष ले लिया मिथ्यार्थ करने के कारण वसु तत्काल ही राज्य सिंहासन सहित पृथिवी में घुसकर मर गया, और उसके पुत्रादि भी मरकर वंशहीन हो गये, देखो जैन योगशास्त्र जैन हेमचन्द्राचार्य कृत पृष्ट १६४ ॥

समीक्षक—अब जैनियों को इस बात पर ध्यान देना चाहिये, कि जिस प्रकार राजावसु का वेदों के हिंसा युक्त अर्थों को असत्य साक्षी मात्र से ही सर्वनाश हो गया, तो जो अब वेदों में बलिदानादि बताते हैं, उनको न जानें क्या दशा होगी, यदि महीधरादि जैनी न होते किन्तु ब्राह्मण होते तो ब्राह्मणों का बलिदान ऐसा अर्थ कदापि न करते, इससे स्पष्ट प्रतीत है, कि वैदिक धर्म के पूर्ण शत्रु थे, दम्भ कर अपने सत्य स्वरूप को छिपाकर वैदिक धर्म का नाश करना चाहा था ॥

जैनियों की दम्भता जैनग्रन्थानुसार ॥

एक वररुचि नाम ब्राह्मण बड़ा विद्वान् था, वह एक नवीन कविता रचकर किसी राजा के पास ले गया, परन्तु उस राजा के मन्त्री तथान्य कर्मचारी समस्त जैनी थे, इस लिये उन्होंने इसकी वहां दाल न गलने दी, किन्तु राजा को बातों में डालकर उस ध्यान से भुला दिया, वररुचि भी नित्य २ नये २ श्लोक बनाकर सभा में प्रत्येक

दिन ले जाता रहा, एक दिन राजा बररुचि के श्लोकों को सुनकर अति प्रसन्न हो उस बररुचि ब्राह्मण की स्वयं प्रशंसा की, तथा अपने मन्त्री और समस्त राज्य कर्म-चारियों से कहा कि तुमने ऐसे विद्वान् की प्रतिष्ठा व मान नहीं किया किन्तु सदा साधारण पुरुषों की तुम प्रशंसा किया करते हो मैंने आज तक ऐसा पण्डित नहीं देखा, तब जैनियों ने कहा कि महाराज हम इसकी क्या श्लाघा (बड़ाई) करें, ये श्लोक जो इसने सुनाये हैं, सो सब यह प्राचीन काल के ही बने हैं, उदाहरणार्थ हमारी पुत्रियों के भी यह सम्पूर्ण श्लोक कण्ठाग्र (याद) हैं, तब राजा ने उन पुत्रियों के बुलाने की इन्हें आज्ञा दी, तब जैनियों ने उन लड़कियों को ऐसा पढ़ाया कि जिस समय बररुचि श्लोक कहे तुम क्रम से एक २ अक्षर कण्ठ कर लेना, जब पूंछे तब क्रम से बोलते जाना, बररुचि ने श्लोक पढ़ा, और एक श्लोक पूरा होने पर बररुचि को पढ़ने से रोका गया, और पुत्रियों की ओर सङ्केत (इशारा) किया गया, तब पुत्रियों ने क्रमानुकूल श्लोक उच्चारण कर दिया, दूसरे दिन उस ब्राह्मण ने सोचा कि आज कोई ऐसी बात बनाऊं, कि जिस में प्राचीन काल का कोई भी चिन्ह न पाया जाय, इस प्रकार मन में ठहरा नवीन श्लोक बना राजसभा में पहुंचकर बररुचि ने श्लोक पढ़ा, कि जिससे सब जैनियों की पोल खुल गई, और इनकी असत् कल्पना (चालाकी)

प्रगट हो गई, पुनः उस राजा ने पण्डित वररुचि का प्रति मान किया, तब तो मन्त्र्यादिकों ने भी वररुचि से मेल भोल कर लिया, क्योंकि जिसका स्वयं राजा ही मान करे तो पुनः उसका मान और कौन न करेगा? अपितु सभी करेंगे। पुनः वे सम्पूर्ण जैनी वररुचि से ऐसे घीखिचड़ी हुए, कि एवं एक होकर परस्पर खान पान अर्थात् यावत् व्यवहार समानता से करने लगे॥

प्रिय पाठक वृन्द! कुछ काल बीतने पर एक दिन पुनः उन कपटी जैनियों ने वररुचि को पानी के धोखे में सुगन्धादि द्रव्य मिलाकर मद्य पिला दी, कि जो अति नशीली थी और वह समय वररुचि का राज सभा में आने का था, वररुचि ज्योंदर्बार में आया, तो मन्त्रियों ने वररुचि के गले में एक माला ऐसे पुष्पों की डाली, कि जिनके सूंघने से वमन हो जाय, वररुचि को वमन हुआ तो पेट से मद्य गिर पड़ी, तब उन कपटियों ने राजा से कहा, कि देखिये महाराज आप जिसकी प्रशंसा करते थे, उस ब्राह्मण की क्या दशा है॥ जैन योगशास्त्र पृष्ठ ३२१

समीक्षक—अब देखिये जहां ऐसे २ द्वेषी हों, वहां क्या २ अनर्थ नहीं हो सके, मूल वेदों को छोड़कर कोई शास्त्र इन्होंने ऐसा न छोड़ा, कि जिस में कुछ न कुछ मिलावट न की हो, और इन्होंने ब्राह्मणों को प्रत्येक स्थान पर अपशब्दों से उच्चारण किया है॥

जैन पद्मपुराण (दिगम्बर ज्ञानचन्द्र प्रेस लाहौर की छपी हुई) में एक स्थान पर ऐसा लेख है, कि रामचन्द्र जी जब कि सीता और लक्ष्मण सहित बनोवास में थे, तो एक दिन चलते २ एक कपिल नामक ब्राह्मण के घर में घुस गये, उस समय ब्राह्मण घर में न था. सो ये उस ब्राह्मण की यज्ञशाला में बैठ गये, जब ब्राह्मण अग्निहोत्र की समिधायें लेकर आया तो उस ब्राह्मण की जैनियों ने ऐसी प्रशंसा लिखी है, कि उल्लू के सदृश है मुंह जिसका, हाथ में है कमण्डलु जिसके, चोटी में लग रही है गिरह जिसके, इत्यादि पुनः उस ब्राह्मण ने अपनी ब्राह्मणी को धमकाया, कि तैंने इनको घर में क्यों घुसने दिया, और रामचन्द्र से कहा, कि तुम मेरे घर में क्यों घुस आये, अब शीघ्र ही बाहर चले जाओ, तुमने मेरी यज्ञशाला अपवित्र कर दी है, सो रामचन्द्र जी घर से नहीं निकले, किन्तु उस ब्राह्मण से लड़ने लगे, इस झगड़े के कारण सारा नगर एकत्र हो गया, सब ब्राह्मण से कहने लगे, कि तू ही मान जा, एक दिन इन्हीं को रह जाने दे, तब ब्राह्मण क्रुद्ध होकर सब से लड़ने को सन्नद्ध हुआ, तब तो सारे पुरुष इनको लड़ते झगड़ते छोड़ निज २ गृह को चले गये, यह कथा जैन पद्मपुराण पृ० २७८ में है ॥

जब ब्राह्मण रामलक्ष्मण को मारने दौड़ा, तब सीता जी ने समझाया कि महाराज इस के घर रहना योग्य

नहीं। भला जो रामचन्द्र जी पिता की आज्ञा मात्र से भी सकलैश्वर्य युक्त राज्य को त्याग जङ्गल को चल दिये थे, तो वे पराये घर में गृह स्वामी की आज्ञा के बिना किस प्रकार घुस जाते, और पुन: कहने से भी बाहर न निकलते, इस लिये ब्राह्मणों और वेदानुयायी राजाओं को असभ्य ठहराने के हेतु इन्होंने ये कहानियां निज पुस्तकों में घढ़ी हैं।

(देखो पता जैन पद्मपुराण पृष्ठ ५७८ से आगे)

पार्श्व पुराण (जो भूधर जैनी कृत है इसके पृष्ट २२) में जहां बड़े जैनी राजाओं और नगरों की प्रशंसा की गई है, जहां सबसे प्रथम यह लिखा है कि ऐसे उत्तम नगर हैं कि नहीं है ब्राह्मण एक भी जिसमें यह निम्न लिखित एक बात इन जैनियों ने कैसी द्वेषता से प्रचलित की है; कि यात्रा के समय में यदि सन्मुख ब्राह्मण मिल जावे तो अपशकुन और यदि भङ्गी (विष्टा सहित भी) मिल जावे, तो महाशकुन है, सो यह बात बहुत मिथ्या और झूठी है।

एक इतिहास जैन कथा रत्नकोश भाग ७ पृष्ट २८ में लिखा है कि एक ब्राह्मण सर्वशास्त्रों का वेत्ता, न्याय में निपुण, पदार्थों के जानने वाला, वेदपाठी, शौच को अति पसन्द करता था, उसने सोचा कि मैं चलकर किसी ऐसे द्वीप में जाऊं जहां मनुष्य पशु पक्षी आदि कोई भी न हो, क्योंकि यहां मलमूत्रादि को पृथिवी पर जीव अधिक करते हैं, और जल भी इसी हेतु से अपवित्र हो

आता है, यह समझ कर वह ऐसे द्वीप में गया कि जहां कोई भी जीव न था वहां रहने लगा, और वहां वह एक ईख के खेत में से गन्नों के द्वारा उदर पूर्ण करता था, एक दिन खेत में उसने मनुष्य मल (विष्टा) को पड़ा देखा तो मन में कहने लगा कि वह इस ईख का ही फल होगा, परन्तु हमारे देश में तो ईख के फल नहीं लगते, इत्यादि अपने मन में ऐसा ठहराया भी, परन्तु अन्त को उसे खा ही गया, समीक्षक—इसबात को कोई मूर्ख भी स्वीकार नहीं कर सक्ता, कि जैनियों ने सत्य लिखा है, क्योंकि वह तो मल मूत्र की घृणा से वहां गया ही था, क्या कोई मनुष्य मल से भी अभिज्ञ (अनजान) हैं, कि जिसकी परीक्षा (पहिचान) उसे न होती, इस पर भी तुर्रा यह कि यह जैनी उसे षट्शास्त्रवेत्ता और पदार्थ-ज्ञानी लिख चुके हैं, अग्रे यदि इन के लेखानुसार यह विचार उत्पन्न करूं, कि जहां कोई भी जीव नहीं थे वहां गया तो वहां ईख का क्षेत्र (खेत) किसने बोया था धन्य है ऐसे विचार करने वालों को ॥

(१) राजा रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी जब कि वन में थे, तो एक अतिवीर राजा की सभा में रण्डी का वेश कर (अर्थात् चूड़ी लंहगा धारण कर घुंघुरू बांध तबले सारंगी मंजीरे पर) नृत्य किया यह जैन पद्मपुराण पृष्ठ ५९८ में लिखा है ॥

(२) एक दिन महाराणी जानकी जी को भी पर्वत पर जैन मुनि और समस्त पुरुषों के सामने नचाया। यह भी जैन पद्मपुराण दिगम्बर पृष्ठ ६१७ में लेख है॥

(३) रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी ने उस बनवास में सैंकड़ों व हज़ारों स्त्रियों से भोग किया, और लक्ष्मण की तो कुछ संख्या ही नहीं॥

समीक्षक—कहिये पाठकवर्ग! यह उपरोक्त तीन लेख जैनियों के कैसे असङ्गत हैं, कि जिनको कोई भी सत्य नहीं मान सक्ता, भला तुलसी कृत रामायण तो १६०० सम्वत् के पश्चात् की बनी है, क्योंकि तुलसीदास जी की मृत्यु सम्वत् १६८० श्रावण शुक्र ७ को हुई थी, इस लिये इस को बने आज ३०० वर्ष अनुमान से होते हैं, परन्तु यदि इसका लेख न माना जाय, तो कुछ हानि नहीं, परन्तु बालमीकीय रामायण कि जो अति प्राचीन ग्रन्थ है, कि जिसके देखने से रामचन्द्रादि का परम पवित्र जीवन था ऐसा बोध होता है। देखो

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य, स्वजनस्य च रक्षिता।
वेद वेदाङ्ग तत्वो, धनुर्वेदे च निष्ठितः॥

इसका तात्पर्य यह है कि अपने और प्रजा के धर्म रक्षण तथा निज जनों की रक्षा करने वाले एवं वेद वेदाङ्ग के तत्ववेत्ता और शस्त्र विद्या में पूर्ण प्रवीण थे, इत्यादि (बालमीकीय रामायण), जैनी तीर्थङ्कर आदि जो

स्त्री के वेश कर कर अपने जीवन में नाचते गाते मटकते रहे जैनाचार्यों ने वेदानुयाइ राजाओं को भी अपने उपर इस दुष्ट कर्म के सवाल उठने पर सम्मिलत कर लिया किन्तु उन्होंने यह नहीं सोचा की वेदादीसतशास्त्रों में पुरुष को स्त्री का वेश धार्ण करना पाप है और आज तक यह बात वैदिक राजा क्षत्रियों को उनकी स्त्री जोश दिलाते समय कहती चली आइ है के यदि तुम लड़ने से भय करते हो तो हमारे वस्त्र (स्त्रियों के वस्त्र ग्रहण) करो तथा रघुवंशादि काव्यों द्वारा इन (राम लक्ष्मणादि) के जीवन चरित्रों का पूर्ण वृत्त मिलता है, इन किसी ग्रन्थों में कहीं भी ऐसा लेख नहीं आया, आता कहां से, रामचन्द्र और उनके लघु भ्राता लक्ष्मण तो वेदानुयायी राजा थे, उनको ऐसी २ कुत्सित बातों से अति घृणा थी, वे नित्य कर्म में पूर्ण थे, क्या कोई तुलसी दास कृत इस चौपाई को भूल गया होगा कि सन्ध्या करन चले दोऊ भाई प्यारा। वे परमात्मा के पूर्ण भक्त थे, और लक्ष्मण का उस समय विवाह नहीं हुआ था वे तो ब्रह्मचर्य्यावस्था में थे, वर्तमान समय जैसे कुकर्मरत नहीं थे, कि जो रण्डियों के वेश बना२ कर नृत्य करते, जैनियों ने ब्राह्मणों और वेदानुयायी राजाओं की मानहानि व कलङ्कित करने को ही अपना परम सौभाग्य माना है, क्योंकि जैन समस्त समुदाय ने अपने व अपने पूर्वज मुनि तीर्थङ्करादि को अव-

कर्मों देखकर यह उपाय सोचा, कि कहीं हमारे ग्रन्थों को देखकर समस्त तीर्थङ्करों से लोग घृणा न करने लगें, इस लिये दूसरे पक्ष के आस्तिक शुभ कर्म परायण राजा व ब्राह्मणों को कलङ्कित करना चाहिये, कि जिससे हम से अच्छे अन्य जाति के मनुष्य न निकलें, सो जैनियों के लिखने से राजा रामचन्द्र व बाल ब्रह्मचारी लक्ष्मण अनाचारी पापविहारी नहीं हो सक्ते, क्योंकि सांच को आंच कहां ॥

किसी जैनी साधु ने एक जैनी र जा को सूचना दी, कि ब्राह्मण यज्ञ करते हैं, यह सुन राजा नङ्गी तलवार लेकर ब्राह्मणों का बध करने लगा, तब उन्होंने यज्ञ स्तम्भ के नीचे से जैन तीर्थङ्कर की प्रतिमा दिखाई, कि हम प्रथम इसका पूजन कर चुके हैं, तब यज्ञ करने दिया देखो जैन तत्वादर्श आत्मा राम जैनी कृत ॥

समीक्षक—इस उपरोक्त लेख से जैनियों ने यह जनाया है कि प्रतिमा पूजन हम से ही चला, तथा हमने ही ज्यों बना त्यों समय २ पर निज पुस्तकों तथा अपने राजादिकों के द्वारा संसार में जैनमत की वृद्धि और वैदिक धर्म की हानि की है ॥

ब्राह्मण के निकट तथा कोतवाली के पास किसी जैनी सम्प्रदाय को घरव दुकान बनाकर न रहना चाहिये जैनतत्वादर्श में लिखा है ॥

समीक्षक—यह जैनियों ने निज मत दोष छिपाने के निमित्त कैसा शुद्ध लेख लिखा है, कि पण्डित विद्वानों के समक्ष हमारी बाल बुद्धिवत् प्रथा कैसे चलेगी, जो मद्य, मांस, व्यभिचार, व छल, कपट, व्यसनादि युक्त अविवेकी चलचित्त चोर वत् होता है क्या वह कभी न्याय गृह (कोतवाली) के समीप रह सक्ता है? नहीं २ पाठकवृन्द वह कोतवाली तो क्या, किन्तु कोतवाल के सिपाहियों की छाया के निकट नहीं आसक्ता, और जहां सत्य है वहां किसका भय। क्योंकि यह न्याय है, कि "सत्येनास्तिभयंक्कचित्" ॥

माकड़ी पुर में दित्य नामक जैनी ने एक ब्राह्मण के घर में घुस ब्राह्मण का वध कर डाला, और उसके यहां जो गौ थी उसके भी टुकड़े २ किये, उस समय उस ब्राह्मण के छोटे २ दो पुत्रों ने हाथ जोड़कर खड़े हो निज प्राण रक्षार्थ निवेदनभी किया, तथापि उनकी ग्रीवा (गरदनें) काटीं, ब्राह्मणी गर्भवती थी, उसके पेट में छुरा घुसेड़ दिया बालक पेट से पृथिवी पर गिरके तड़फने लगा, उसे भी पैरों से कुचल दिया, (देखो जैन योगशास्त्र पृष्ठ ६० अथवा जैन कथा रत्नकोश पृ० ४२)

समीक्षक—तुर्रा यह हैकि उसने ऐसे२ महानिन्दित घोर पाप कृत्य करके भी छः मास में केवल ज्ञानी हो, तीर्थङ्करों के तुल्य सद्गति पाई जैन योगशास्त्र में इस

बात को अति हर्ष पूर्वक लिखा है कि—

ब्रह्म स्त्री भ्रूण गोघातं पातकान्नरकातिथेः

अर्थात् गौ ब्राह्मण व स्त्री तथा बालक व गर्भ के स्राव करने (गिराने) वाला लौकिक ग्रन्थनुसार अवश्य नरक को जाता है ॥

समीक्षक—इस उपरोक्त लेख से तो यह विदित हुआ, कि ऐसे कुकर्मों के करने वाला यदि जैनमत से विरुद्ध हो, तब तो नरक को और यदि जैन मतावलम्बी हो तो नरक गामी नहीं होता, जैसे कि यह दिव्य जैनी ऐसे महापातकों का कर्ता होकर भी तीर्थङ्करों के तुल्य सद्‌गतिको प्राप्त हुआ क्योंकि इनका जो यह संस्कृत लेख कि जो वास्तव में सत्य है, कि ऐसे दूषित कर्मचारी नरक के भागी हैं, तथापि वह जैनी था और महात्मा ब्रह्मादि वेदानुयायी नर्क में गये यह कहना इस लिये न्याय को एकान्त रख, निज बाल बुद्धि रूप जैन हठ धर्मवश सद्‌-गति होनी लिख मारी ॥

दशाश्रुत स्कन्ध ४ उद्देश्य में गौतम केवल ज्ञानी उपदेश करते हैं, गाथा—अवण वाइ पडिं हणिता भवइ। अर्थात् जिन पुरुषों से जैनमत में व्यवधान (रुकावट) हो उन्हों का अति शीघ्र वध कर दो, यदि साधु भी सामर्थ्य-वान् हो और ऐसे पुरुषों को न मारे, तो दोषभागी

होगा चक्रवर्तीराजा को उसकी सेना सहित मार डालना योग्य है, जो जैनमत से विरुद्ध हो ॥

समीक्षक—यह कैसा हठ धर्म पन का लेख है, कि बलात्कार (जबरदस्ती) से राजा प्रजाओं को जैनी बनाओ अथवा बध कर दो, एस कार्य के लिये किसी जैनी ने निज मुनियों से फौज पलटनें नहीं मांग लीं, फारन उनसे इस प्रकार का कोई कल्पवृक्षही मांग लिया होता, कि जिसमें से राजा सेनादिकों से लड़ने के लिये फौजेंही फौजें नित्य निकलती आतीं, कि जिससे सारा देश जैन हो जाता ॥

अब जैनियों की दया को देखिये ॥

पद्म नामा साध्वी ने एक क्षुधातुर को जब कि उस से भोजन मांगा और उस समय साध्वीके पास भोजन था परन्तु उसको भोजन न दिया, कि जिससे मारे भूख के उसने प्राण भी त्याग दिये, समीक्षक—जैनमत को ज्यों२ आगे देखो, त्यों २ ऊपरी ओर से दया भाव और आभ्यन्तरीय वृत्त उपरोक्त लेख से ही विदित है, क्योंकि इनका तो यह तात्पर्य है कि दूसरों की हानि में निज हानि नहीं समझना ॥

एक क्षुधातुर ने एक जैन साधु से कि जिसके पास भोजन था, भोजनार्थ याचना की तो उसे उत्तर दिया, कि

जब तक तू जैनी न होगा तुझे कदापि भोजन न दूंगा (जैन कथा र० को० भा० ५ पृष्ठ ६४) ॥

समीक्षक—सत्य तो है इन से निकले हुए यवन भी तो ऐसा ही करते हैं, कि यदि यवन हो तो एक टुकड़े ही में शामिल कर लेते हैं और यदि अन्य मतावलम्बी हो तो उसे सूखा अन्न भी नहीं देते, जब लघु भ्राता का यह हाल है, तो बड़े भाई तो आप खुर्रांट हैं ॥

उत्तराध्ययन की निर्युक्ति में विष्णुकुमार जैनमुनि ने निमुंचि महाबल चक्रवर्ती राजा को धोखा देकर मार डाला, क्योंकि महाबल ब्राह्मण था ॥

समीक्षक—क्यों न हो, जब इनके यहां कुल पाप है, कि अन्य धर्मावलम्बी को यदि कितना ही उत्तम हो, तथापि जैनमत विरुद्ध होने से मार दो, तो इसमें क्या पाप किया, इसी हेतु से इन्होंने इसको पाप न समझ पुस्तकों में लिखा, क्योंकि यदि पाप जानते तो निज मतावलम्बी के अवश्य दोष छिपाते, कि जो इनका असल सिद्धान्त है ॥

भगवती सूत्रादि में लिखा है, कि सुमङ्गल जैनमुनि ने राजाविमल वाहन को अश्वों (घोड़ों) सहित रथारूढ हुए को दग्ध कर दिया, इस फूंकने के प्रताप से अनुत्तर विमान में देवता हुआ, (जो कि जैनियों ने मुक्ति से एक कक्षा—दर्जा न्यून माना है उस में गया) ।

समीक्षक—यद्यपि उक्त राजा जैनमत से विरुद्ध भी मान लिया जावे, तथापि घोड़े तो निरपराधी थे, उन विचारों का जीवन क्यों नष्ट किया, क्यों न हो—चनों के सङ्ग विचारे घुन भी पिसने हो थे। उत्तराध्ययन में हरि केशी जैनमुनि ब्राह्मणों से कहता है कि—

पुव्विच इणि च अणागयं च मणप्प दोसो
नमे अथ्थि कोई जरका हुवे या वड़िय करीति
तो माहुए एनि हया कुमारा।

अर्थात् हे ब्राह्मणो! तुम्हारे पुत्रों को जरक (यक्ष) ने मेरी आज्ञा से मारकर मुझ को प्रसन्न किया, इस हरी केशी की प्रशंसा सुधर्मा केवल ज्ञानी ने जिसको जैनी महावीर से दूसरे दर्जे पर मानते हैं, अनेक प्रकार से लिखी है, इत्यादि अनेक लेख जैनग्रंथों में ऐसे ही ऊट-पटांग लिखे हैं कि जिनको लिखें तो वह पुस्तक बन जाय, और उससे किञ्चित् भी लाभ न हो॥

इसलिये जैनियों ने ब्राह्मणों को वेदानुयायी जानकर प्रत्येक प्रकार से तङ्गकर दुःख दिया, यहां तक कि ब्राह्मणों के वंश नाश करने में किसी प्रकार से न्यूनता नहीं रक्खी। अनाथ बालकों पर तो कसाइयों का भी हस्त नहीं उठता, जैन महामुनियों ने इन्हें अपने सम्मुख मरवाया, और उनके पशु तथा स्त्री आदिका भी वध कराया जब जैनमुनियों के ये धर्म व कर्म हैं, तो इनसे विरुद्ध

चलने वाले जैन जो कि गृहस्थ हैं, वे महाकुकर्मी (अपने पूर्व मुनियों के सिद्धान्तानुसार) ठहरेंगे ॥

महावीर तीर्थङ्कर ने भी (जिस पर कि जैन मत निर्भर है) ब्राह्मणों से इस प्रकार शत्रुता वर्ती है कि—

महावीर प्रथम ब्राह्मण के वीर्य द्वारा ब्राह्मणी के गर्भ में आया, जब साढ़े बयासी ८२॥ रात्रि व्यतीत हो चुकीं तो उसने अपने केवल ज्ञान से उदर में ही सोचा, कि मैं तो अब ब्राह्मणी के उदर में हूं, उत्पन्न होने पर ब्राह्मण कहलवाऊंगा, इस ज्ञानी का सोच उसने अपना स्थान छोड़ दिया उठा, ८२॥ रात्रि के पश्चात् एक क्षत्रिय स्त्री के पेट में जा डेरा जमाया ॥

समालोचक उस महावीर केवल ज्ञानी ने यह भी न सोचा, कि यदि उदर बदल लूंगा, तो किन्तु तो ब्राह्मण ही का रहेगा, प्रत्युत अन्य वर्ण का वीर्य अन्य वर्ण की स्त्री में जाने से जारज (जारज) कहलाता है, प्रथम तो ब्राह्मणी के पेट से क्षत्रिय स्त्री के पेट में ये महावीर कैसे घुस गये, क्योंकि नाल जिसमें कि बच्चों की सिल्ली लिपटी (अर्थात् बंधी) हुई होती है, वह तोड़कर किस प्रकार से जोड़ा होगा, कि जिसके द्वारा माता के उदर से उसका प्रतिपालन होता है, इत्यादि असम्भव बातों के लेखकों को धन्य है, और विशेष धन्य के भागी वे हैं, कि जो ऐसे मत प्रचारकों पर विश्वास लाते हैं। इस प्रकार की धन्य जैनियों ही के भाग्य में रहे ॥

जैनग्रन्थों में ब्राह्मणों की उत्पत्ति यों लिखी है।

आदि नाथ तीर्थङ्कर जिस के घर में उसकी बहिन और एक विधवा माँ थी, उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए, एक तो भरत, दूसरा बाहुबली, भरत ने ब्राह्मण का चौथा वंश चलाया, अर्थात् तीन वर्ण तो "क्षत्री, वैश्य, और शूद्र" प्रथम से ही थे, परन्तु चौथा जो ब्राह्मण वर्ण शेष रहा था सो इसने चलाया, और हीरे की कनी से ब्राह्मणों के शरीर का चर्म उड़ाकर यज्ञोपवीत के चिन्ह बनाये, ताकि चिन्ह से ज्ञात कर सकें॥

समीक्षक—ब्राह्मण वर्ण तो आदि से ही सर्व वर्णों से उच्च चला आ रहा है, कि जिसके तीन वर्ण अनुचर हैं ऐसे महा प्रतिष्ठित वंश की उत्पत्ति जैनियों से होनी लिखने में लज्जा नहीं आई, कि इस हमारे लेख को एक बच्चा भी स्वीकार नहीं कर सक्ता, भला हीरे के चिन्ह, क्या निरन्तर रह सक्ते हैं? किंजो पहचान के लिये लिखे बताये हैं, ऐसी बातों पर विश्वास जैनी (कि जिनके हृदय में न्याय (इन्साफ) और सत्यासत्य की विवेचना नहीं है) भले ही करें, अन्य तो कोई भी विद्वान् नहीं कर सक्ता॥

वर्तमान समय में जैन धर्म की बड़ी २ मौजूदा दो शाखें हैं (१) श्वेताम्बर, (२) दिगम्बर, और वाममार्ग दोनों शाखाओं के शास्त्रों में सिद्ध है इन दोनों के छः काल इस प्रकार लिखे हैं॥

उत्सर्पिण्य व सर्पिण्यौ वर्तते भारते सदा।
दुर्निवार महावेगौ त्रियामावा सराविव ॥४॥
एकैकस्यात्रषड् भेदा: सुखमासुखमादय:।
परस्पर महा भेदा वर्षं वा शिशिरादय: ॥५॥

कोटी कोट्यो दशाब्धीनां प्रत्यक मनयो: प्रमा
तत्रावसर्पणी ज्ञेया वर्तमाना विचक्षणै: ॥६॥
कोटीकोट्योम्बुराशीनां सुखमासुखमादिमा।
चतस्त्रोगदितातिस्रो द्वितीयासुखमासमा ।७।
तेषामन्त्ते तृतीयाद्वे सुखमादु:खमादिते।
तासुचिद्रो क पल्यानि जीवितक्रमतोऽङ्गिन:८
त्रिद्व्ये ककोसता क्रोशा: क्रमतोऽत्रतनून्नति:।
त्रिद्वे कदिवसैस्तेषामाहारो भोगभागिनाम् ९।
आहार: क्रमतस्तुल्यो बदरामलकाक्षकै:।
पर्यायोदुर्लभा वृष्य: सर्वेन्द्रियवलप्रद: ॥ १० ॥
नास्ति स्व स्वामिसम्बन्धनो नान्यगेहागमागमौ
न हीनो नाधिकस्तत्र न व्रतंनापि संयम:११।
सप्तभि: सप्तकैस्तत्र दिनानां जायतेऽङ्गिनाम्।

सर्वभोग क्षमोदेहो नव यौवन भूषणः ॥ १२ ॥
स्त्रीपुंसयोर्युगंतत्र जायते सह भावतः।
कान्तिद्योतितसर्वाङ्गं ज्योत्स्नाचन्द्रमसोरिव १३
आर्यमाहयते नार्यं प्रेयसी प्रिय भाषिणी।
तत्रासौवप्रेयसीमार्यां चित्रचाटु क्रियोद्यतः १४
दशाङ्गेन दीयते भोगस्तेषां कल्पमहीरुहैः।
दशाङ्गैर्निर्विकारैश्च धर्मैरिव सविग्रहैः ॥ १५ ॥
मद्यतूर्यगृहज्योतिभूषा भाजन विग्रहा।
स्रग्दीपवस्त्र पाचाङ्गा दशधा कल्प पादपाः १६

अमित गत्याचार्य कृत धर्म परीक्षा पृ० २४८-२५०

भावार्थ—भरत क्षेत्र में उतसर्पिणी और अवसर्पिणी दो काल क्रम से सदा आया करते हैं, और प्रत्येक काल के छः विभाग होते हैं, सुखमासुखमा, सुखमा, सुखमा-दुखमा, दुखमासुखमा, दुखमादुखमा, दुखमा ॥

एक २ काल दश क्रोड़ा क्रोड़ी सागर का होता है, सो जिस काल में उपरोक्त प्रकार से हों, सुखमासुखमादि छः काल होते हैं, उसको अवसर्पिणी काल कहते हैं। और जिस काल में इससे विरुद्ध हो, उसको उतसर्पिणी काल कहते हैं और इन दोनों के चक्र को कल्प काल

कहते हैं, सुखमासुखमा काल चार ४ क्रोड़ा क्रोड़ी सागर का होता है, जिस में पहिले काल के मनुष्यों की आयु तीन पल्य की शरीर की ऊञ्चाई ७ मील। दूसर में दो पल्य की आयु और ऊञ्चाई कुछ न्यून ५ मील। तीसरे में १ पल्य की आयु और ऊञ्चाई २। मील होती है॥

प्रथम काल में झाड़ी के एक बेर के तुल्य आहार। दूसरे में आंवले के सदृश। तीसरे में बहेड़े के समान होता है. इन तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों में स्वामी सेवक और आने जाने का सम्बन्ध तथा व्रत व संयम (नियम धर्म) कुछ भी नहीं होता, इनका जोड़ा अति सुन्दर होना बताते हैं, और वह जोड़ा ४८ दिन में युवावस्था को प्राप्त हो विषयादि में प्रवृत्त हो जाता है॥

नवीन जोड़ा के उत्पन्न होते ही पहिला जोड़ा (माता पिता) मर जाता है, और इन तीनों कालों में रहने वालों की आवश्यकताओं के पूर्ण करने के निमित्त दश कल्प वृक्ष हैं, कि जिनके नाम ये हैं॥

(१) मद्य जाति का कल्प वृक्ष—जो जैनमुनि व जैन मतानुयायियों को मद्य पिलाकर उन्मत करता था॥

(२) तूर्य जाति का वृक्ष—यह प्रत्येक वाद्यों के द्वारा उस प्रमत्तावस्था में कानों को प्रसन्न कर जाता था॥

(३) गृह जातिकावृक्ष—यह सबके महल मकानादि बना देता था॥

(४) ज्योतिराङ्ग जातिका वृक्ष—यह हजारों सूर्य से भी अधिक प्रकाश कर देता था ॥

(५) भूषणाङ्ग जाति का वृक्ष—यह प्रत्येक प्रकार के आभूषण (ज़ेवर) मीना जड़ाई आदि सभी प्रकार के बनाकर पहिना जाता था ॥

(६) भोजनाङ्ग जाति का वृक्ष—यह मांसादि प्रत्येक (नाना) प्रकार के भोजन खिलाता था। बहुत से नवीन जैन ग्रंथों में मद्य वृक्ष को पानाग लिखने लग पड़े थे इसी प्रकार मांस वृक्ष से भोजनाग हो गया क्योंकि मद्य मांस का मेल है ॥

(७) माला जाति का वृक्ष—यह सब को पुष्पों के हार पहिना जाता था ॥

(८) दीपक जाति का वृक्ष—यह नित्य प्रति दीपक जला जाता था ॥

(९) वस्त्राङ्ग जाति का वृक्ष—यह वस्त्रों के वास्ते रूई आदि वस्तुएं बना बुन सींकर पहिना जाता था ॥

(१०) पात्राङ्ग जाति का वृक्ष—यह प्रत्येक धातु उपधातुओं के पात्र (बर्तन) बनाकर दे जाता था ॥

समीक्षक—भोग भूमि के मनुष्यों के माता पिता यदि उत्पन्न होने के समय ही मर जाते थे, तो आदि नाथ के माता पिता और आदि नाथ क्यों ना मरे यह भी तो युगल श्रेणी में थे और मरण समय में उनके गर्भ

रहता था, इत्यादि इनका यह कहना योग्य नहीं है, क्योंकि सन्तान उत्पन्न होतेही उनके माता पिता के मरने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता, और न शिथिलेन्द्रिय होने पर वृद्ध पन में गर्भाधान हो कोई स्थिर कर सक्ता है, और यदि उनके उत्पन्न होने परही उनके माता पिता का मरण मान लिया जाय, तो उनकी पालना किसके द्वारा होती थी, यद्यपि जैनमुनियों (तीर्थङ्करों) ने निज पुस्तकों में जोड़े के प्रतिपाल विषय में यह लिख रक्खा है, कि सात दिन अङ्गुष्ठ चूसने से और सात दिन लोट पोट कर जीवित रहते थे, पश्चात् कल्प वृक्ष प्रतिपाल किया करते थे, भला कल्पवृक्षों ने दूधों क्यों ना पिलाई सो इनका यह कहना अति असङ्गत है, क्योंकि अङ्गुष्ठ में से कोई वस्तु नहीं निकलती, कि जिससे पेट भर जावे, और लोट पोट कर गर्द्दभ तो अपने परिश्रम को दूर करता है, परन्तु पेट उसका भी नहीं भरता, और कल्पवृक्षों के द्वारा भला मनुष्य का प्रतिपाल कैसे हो सक्ता है, और शब्दोच्चारण व विद्यादि का परिज्ञान विचारा कल्पवृक्ष कैसे करा सक्ता है, कि जिसकी परमावश्यक्ता है, मुझे अति आश्चर्य होता है, कि ऐसी २ असम्भव बातों पर (वर्तमान विद्या समय में भी) लोग कैसे विश्वास लाते हैं।

जिस वस्तु की कल्पना करो, वही प्राप्त हो जाता था, तो इस प्रकार के कल्प वृक्षों के होने की क्या आव-

श्यक्ता थी, किन्तु एक वृक्ष ही सम्पूर्ण कल्पनाओं को पूर्ण कर सक्ता था, क्योंकि मन मोदक खाने में तो न वस्तु के आने में देर, और न खाने में ॥

जैनाचार्यों ने ऐसा गोल माल लेख निज पुस्तकों में लिख मारा है कि जिसका कुछ पता नहीं है, क्योंकि इन्होंने यह नहीं लिखा, कि मनुष्य इन कल्प वृक्षों के समीप जाकर निजेच्छा पूर्ण करते थे, या कल्प वृक्ष ही दौड़ २ कर इनको इच्छानुसार वस्तु दे जाते थे, तथा वे वृक्ष जड़ थे, अथवा चेतन और उनके हस्त पादादि थे, वा नहीं यदि कहो कि हस्तादि नहीं थे, तो गृह आभूषण तथा भोजनादि यावत् द्रव्य कैसे बनाते थे, और यदि यह कहो कि हस्त पाद कर्ण वाक् आदि सर्वेन्द्रियां थीं, तो उनका नाम वृक्ष क्यों लिखा ॥

जैन ग्रन्थानुसार प्रथम आरे की प्रत्येक वस्तु क्रमशः घटती और अन्तिम आरे से क्रमानुकूल बढ़ती है, किन्तु उनका लोप नहीं होता। पुनः अब न जाने किस जैन आईन (रूल व कानून) से वे कल्पवृक्ष लोप हो गये, क्योंकि उनको तो आरों के क्रमानुकूल रहना ही था, यदि कोई यह कहे कि वे केवल जैनियों ही के सहायक थे, तो अब भी तो सहस्रों तथा लक्षों जैनी वर्तमान हैं, इनको सहायता न देने से, व कल्पवृक्षों के लोप हो जाने से इनका अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी आदि काल

का स्थिर सदैव क्रमानुकूल रहना कैसे प्रमाण मानाजावे॥

जब एक ज्योतिराङ्ग वृक्ष ही कोटियों सूर्य से अधिक प्रकाशक था, तो दीपाङ्गवृक्ष की क्या आवश्यक्ता थी, यदि कोई पुरुष सूर्य के प्रकाश समय में दीपक प्रज्वलित करे, तो वह महामूर्ख है, क्योंकि दीपक से अन्धकार की निवृत्ति होती है, जहां अन्धकार ही नहीं, वहां दीपक जलाना व्यर्थ है. यदि कहो कि रात्रि में दीपाङ्ग काम देता था और दिन में ज्योतिराङ्ग सो यह कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि जहा कोटियों सूर्यके सदृश कल्प-वृक्ष विराजमान हैं, उस स्थान में अन्धकारमय रात्रि का कहां ठिकाना, किन्तु वहां तो दिन ही दिन रह सक्ता है, यदि सर्वकाल में दिन ही बना रहता था, तो अवसर्पिणी आदि कालों की गणना अर्थात् बिना वर्ष आदि की सङ्ख्या के जाने कैसे करते थे, यदि उस समय में मनुष्य सात २ मील के ऊंचे होते थे, तो उस समय के कल्पवृक्षादि भी सो २ मील के ऊंचे होते होंगे, सो यह बात भी पदार्थ विद्या से अत्यन्त विरुद्ध है, क्योंकि ऊपर वायु की न्यूनता से वृक्षों के पल्लव पुष्पादि प्रफुल्लित नहीं हो सक्ते, और न सात मील ऊपर मनुष्य ही जीवित रह सक्ता है। वे सात २ मील के मनुष्य हिमालय आदि पर्वतों को एक डली वा रोडे के समान, और समुद्र को नदी जैसा मानते होंगे, एवं नदी को तो एक बालिश्त जैसी चौड़ी धार मानकर एक पैर इधर से उठाकर उधर

रख देते होंगे यह तो आज कल के ही जैनी कुभागी हैं, कि नदी पार जाना होता है तो नौका की बाट देखा करते हैं !!

यदि सात मील के ऊंचे मनुष्य ४८ दिवसों में पूर्ण युवावस्था को प्राप्त होजाते थे, तो वे ७० दिन में वृद्ध भी होजाते होंगे, पुन: उनकी अवस्था तीन २ पल्य की क्यों जैनी मानते हैं, और जब तीन २ दिन में वे एक झाड़ी के बेर तुल्य आहार करते थे, तो सोलह १६ बेर खाकर ७ सात मील ऊंचे किस वस्तु से होगये, क्या इतने बड़े शरीर की तृप्ति एक बदरी फल (बेर) के बराबर खाने से ही हो जाती थी, वर्तमान समय में चूर्ण की एक गोली को जो कि बेर के तुल्य होती है भोजन करने के पश्चात् भोजनकृत पदार्थ के पाचनार्थ खा जाते हैं, इससे तो यह विदित हुआ, कि पूर्वकाल के जैनियों से इस समय के मनुष्य अधिक बलवान हैं, कि भोजन से भिन्न एक क्या यदि कहो तो विशेष गोलियां खाकर हज़म कर जाते हैं। जब इतने २ बड़े शरीर लंबे और चौड़े थे, तो उस समय में हाथी और उष्ट्रादिक भी न्यून से न्यून २५। २५ मील के अनुमान लंबे (ऊंचे) होते होंगे, उन विचारों का जीवन वायु के विना २५ मील ऊंचे होने के कारण कैसे होता होगा, और उनके मरने से अत्यन्त दुर्गन्ध भी होती होगी, क्योंकि आज कल एक

चूहो जोकि अति छोटी होती है उसके मरने से एक बड़ा गृह दुर्गन्ध युक्त हो जाता है, तो अब एक चूहो और हाथी के भार का हिसाब लगाकर बुद्धिमान जन जान सक्ते हैं कि उन २५, २५ मील के मृतक शरीरों से कितना संसार में अहित होता होगा, अर्थात् महामरी आदि रोग विशेष होते होंगे, सो प्राचीन काल के इतिहासों में महामरी आदि रोगों के प्रवृत्त होने का नाम भी नहीं है, इससे जानाजाताहै कि इन जैनियोंके पोथे केवल थोथे (निस्सार पोल युक्त) ही हैं इन्होंने मनमानी कपोल कल्पित कहानियां बना रक्खी हैं, यह जैनी भोग भूमि के मनुष्यों की बड़ाई, तेजस्वी, प्रतापी, शरीर उन्नत, तथा बड़े २ बलधारी आदि बहादुरी के विषय में लेख लिखते गये, परन्तु यदि बुद्धि पूर्वक लिखते तो सभी मान्य और आदर करते, आज कल तो जैनियों के ग्रन्थ अपना मुंह दिखाने के योग्य नहीं हैं, इसी लज्जा के हेतु यह जैनी निज मत के पुस्तक किसी को नहीं दिखाते, कि कहीं हमारी और हमारे पूर्वज तीर्थङ्करादिकों की कलई न खुल जावे, यत्न तो ये बहुतेरे करते हैं कि हमारे मत के ग्रन्थों को कोई देख न लेवे, परन्तु तब भी मनुष्य देखही लेते हैं, जब मैंने इनके ग्रन्थों का अवलोकन किया तभी तो इनकी सारी कृत्य (करतूत) ज्ञात हुई ॥

महाशयो ! अब दिगम्बर (नङ्गे रहने वाले) जैना-

चार्यों का एक लेख देखिये, वे लिखते हैं, कि भोग भूमि के जीवों के मृतक शरीर स्वयं परमाणुरूप हो हो कर कर्पूर के सदृश उड़ जाते थे ॥

समीक्षक- जब ऐसा था, तो उनके शरीर तीन २ पल्य तक किस प्रकार ठहरे, क्योंकि उन्हें तो बहुत पहिले ही उड़ जाना था, यदि यह कहो कि जीव की शक्ति व इच्छा से ठहरे, तो जीव से पृथक् क्यों हुए, दूसरे अब भी मृतक शरीर क्यों नहीं उड़ जाते, यदि कहो कि उनके शरीर ही कर्पूरवत् थे, तो जैसावीर्य वैसा ही शरीर, फिर जैनी भी तो उन्हीं के सन्तान वा अंश से हैं, ये भी उनके चाहिये थे, यदि कहो कि वे पराक्रम वाले थे, तो उनका आहार तो एक बेर के ही तुल्य था, इस हेतु से जब आप आध सेर आटा एक समय में खाकर हजम कर जाते हो तो पराक्रम की तो अब वृद्धि हुई है न कि न्यूनता। ये विचार कहां तक दौड़ें, अन्त में झूठ के पैर कहां। प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ जो एक नीलाञ्जना देवी अर्थात् अनेक वेश्याओं में से एक नीला थी, उससे अधिक प्यार करते थे, अर्थात् वह इनकी प्राणप्रिया थी, उसके मरण के वियोग से ये वैरागी होगये थे, इसके घर में एक निज बहिन सुनन्दा, और दूसरी विधवा सुमङ्गला थी, ये जैन-योग शास्त्र और जैन तत्त्वादर्श पृष्ठ ६४ में लिखा है इस आदिनाथ तीर्थङ्कर ने पुरुषों को ७२ कला अर्थात् पुरुष स्त्रियों का वेषकर नाचना, ताल बजाना, तबला, मृदङ्ग,

मुरचङ्ग, आदि का बजाना, तथा आंखें चलाना, मटकना स्त्रियों के अङ्गों को टटोलना, स्तम्भन आदि एवं अपनी पुत्री ब्राह्मणी तथान्य स्त्रियों को इङ्गित चेष्टित सङ्केत (इशारा बाजी) कला, (आसन) जादू, टोना, दम्भ, जल स्तम्भ, (गिरते वीर्य का रोकना) मान करना, सिसकारी करना, लीला रचना, काम क्रिया करना, शृङ्गार करना, कामातुर करने की बातें, ढीठता, केशों का गूंधना (पट्टी जमाना) झगड़ना, कहानी, दोहे, कबित्त, नाचना, गाना आदि अनेक बातें सिखाईं, ये उपरोक्त बातें जैन योग शास्त्र और जैन तत्वादर्श पृष्ठ ६४ में हैं ॥

* आदि नाथ के पुत्र भरतको जैनी चक्रवर्ती बताते

---

* नोट—आत्माराम जैनी अपनी पोथी जैन तत्वादर्श पृष्ठ ३६ में अपने मत से भिन्न दूसरे मतों के वास्ते लिखते हैं, कि जिस देव के निकट स्त्री होगी वह अवश्य कामी अर्थात् स्त्री से विषय भोग करने वाला होगा, इस भरत के कामीपने में अब और क्या न्यूनता रही, प्रथम आत्माराम को चाहिये था कि निजमत के ग्रन्थ रूप दर्पण में अपने मुँह को देखते, कि हमारे तीर्थङ्कर कैसे महाकामी थे, क्योंकि आत्माराम के लेखानुसार ये बेटी, बहिन, पुत्री, माता आदि से भी जैनमतावलम्बी विषय भोग करते थे, वाह धन्य है, अपने स्याही के हाथ औरों के लगाना चाहते थे ॥

हैं, इसके दिगम्बरी ९६ हजार, और चौंसठ हजार श्वेताम्बरी स्त्री बताते हैं, जिसमें इसको बहिन पटरानी थी, और रण्डियों वा अन्य स्त्रियों के विषय का तो कुछ अन्त ही नहीं जैन योगशास्त्र पृष्ठ ३४ में यह लेख लिखा है, और इसी पुस्तक के पृष्ठ ४९ में यह भी लेख है, कि इसने गङ्गा नदी के साथ एक १००० वर्षतक विषय किया

समीक्षक—ऐसे २ कामी विषयी दुर्व्यसनी जन ही जैन मत में तीर्थ तुल्य, और विषय ९६००० स्त्रियों से करना कि जो नित्य नियत थीं, तथान्य नवीन आई हुइयों की सङ्ख्या अनगिनत थी। जैनी जन ही ऐसे २ कुकर्मरतों का प्रातःकाल नाम लेकर पवित्र होते होंगे। गङ्गा नदी तो जड़ है, उसके भगेन्द्रिय नहीं, इसी जैन के परिवार में यदि गङ्गा नदी नामक कोई स्त्री हो] तो आश्चर्य नहीं, परन्तु इतनी आयु असत्य है॥

जब तीर्थङ्कर को केवल ज्ञान होता है, तो उसके निकट बड़ी२ रूपवती तरुणा देवाङ्गना और स्त्रियां होती हैं, और वहां सदा नृत्य भी होता है, प्रत्येक तीर्थङ्कर की शिष्यायें चेलियां) पुरुषों की अपेक्षा द्विगुणी वा त्रिगुणी होती हैं, वाममार्ग और जैनमत इन दोनों मतों में चक्र की पूजा होती है॥

समीक्षक—आज कल के जैनी जन निज पुस्तकों में जब ऐसे ऐसे लेख पढ़ते होंगे, तब जिन के आत्मा विषय

कामनाओं से भरपूर होते होंगे. वह तो अवश्य नवयौवनाओं के आलिङ्गनार्थ स्वयं केवल ज्ञानी बनने का पूर्ण उद्योग करते होंगे, परन्तु हा! उनके नसीब खोटे हैं, जो विद्या प्रकाश होगया ॥

प्रतिक्रमण सूत्र निर्णयसागर प्रेस बम्बई सम्वत् १९३९ ता: १६ नवम्बर सन् १८८२ पृष्ठ २३० में चौबीस तीर्थङ्करों की २४ देवियां निम्नलेखानुसार लिखी हैं ॥

गाथा— रक्कन्तुमम रोहिणी पन्नती वज सिखला ममया। वज कुसि चक्केसरी नरदत्ता काली महाकाली॥ गौरी तह गन्धारी महजाला माणवी अवरुट्टा अच्छुता माणसिआ महामाणसिया उदेवीउ ॥ ६ ॥

देवी उचक्केश्वरी अजिया दुरियारी काली महाकाली अच्चुअमन्ता जाला सुतारया सोय सिरिवच्छा ॥

* चंडा विजयं कुसि पन्न इति निर्वाणी अच्चुआ

---

* ये उपरोक्त २४ देवियां जब २४ तीर्थङ्करों के निकट थीं तो क्या आत्माराम जैनी के लेखानुसार ये कामी व विषयी नहीं ठहरे ?

ये उपरोक्त देवियां विषय कामना में पूर्ण अनुरक्त थीं, इन में से एक किसी देवी ने एक पुरुष से विषयार्थ अति आग्रह किया, दे०(जैन क० र०को०भा०५पृ०४२८)

तीर्थङ्कर की प्रतिमा की पूजा में भी नकली देवी (स्त्री) अति सुन्दर पुष्पों के बङ्गले समेत होती है, सुन्दर

धरणी वइरुह कुत्त गन्धारी अंब पउमा वई सिद्धा ॥

अब प्रतिक्रमण सूत्र पृष्ठ २३३ में ५२ वीर और ६४ योगिनी लिखी हैं कि जिनको वाममार्गी मानते हैं, और २३५ पृष्ठ में जैनाचार्यों ने चक्र की पूजा अहोरात्रि में करनी चाहिये ऐसा लिखा है, कि जिसको वाममार्गी भी करते हैं पुनः जैनी अपने को वाममार्गी से पृथक क्यों मानते हैं ॥

चक्र स्थापना में पांच देवियां जैसेकि पद्मा, जया, विजया, अपराजिता, चक्रेश्वरी । तथा पांच बीज मन्त्र जैसे ओम् ह्रह्रुं ह्रः सरहुंसः, स और ह सम्पुट समय में उच्चारण होते हैं ॥

समीक्षक—देखिये यह भी प्रतिक्रमण सूत्र पृष्ठ२३८ में वाममार्गवत् लेख है । चक्र की पुजा आदिनाथ तीर्थङ्कर ने चलाई क्योंकि उसकी देवी का नाम चक्रेश्वरी है देवी को भैरवी भी कहते हैं ॥

तीर्थङ्कर महावीर का नामी शिष्य अभय कुमार (कि जो श्रेणिक का पुत्र था) जैनमुनि राजा था एक वेश्या से १२ वर्ष पर्य्यन्त विषय करता रहा ।

समीक्षक—यदि ऐसा विषयी यह न होता, तो महावीर का मुख्य और नामी शिष्य कैसे बनता, जैनमत में

भङ्गी, पञ्च भङ्गी (नग्न) सर्वाङ्ग आभूषण सहित होना । देखो इन तीर्थङ्करों का स्त्रियों में प्रेम कि मरने पर भी प्रतिमा साथ है ॥ जैनतत्वादर्श पृष्ठ ४७४ ॥

तो जो अत्यन्त विषयी हो, वह तो प्रतापी, और न्यून वाला कमनसीब माना है ॥

एक साधु किसी श्रावका से विषयकरते समय मोदक खाते हुए को केवलज्ञान हो गया, (जैन कथा रत्नकोश भा० ५, पृष्ठ१०४)।

समीक्षक—इस साधु को तो जैनियों ने इस लिये केवल ज्ञानी लिखा होगा, कि इसने इतना वीर्यदान नहीं दिया कि जितने मधुर २ मोदक खाता गया अच्छा बुद्धिमान था ॥

विशाला नगरी में एक विख्यात वृद्ध जैनाचार्य ने विषय किया (जैन कथा र० को० भा० ५ पृ० १८६)।

समीक्षक—जैनमत में वृद्धावस्था के विषय भोग का अधिक महात्म्य मानते होंगे, क्योंकि अन्यमतों में इस अवस्था में भजन करने का उद्योग करते हैं, तदनुसार जैनी सर्वकाल में अधिक विषय करने को ही सार मानते हैं, अतः जैन वृद्धों का तप यही है ॥

जैनियों ने रावण को अति उत्तम जैनी और महापुरुष माना है, क्यों न मानें वह तो इनके अनुकूल मद्यपा, मांस भक्षी, व्यभिचारी था इस लिये ॥

जैनियों के यहां इन्द्र, चक्रवर्त, नारायण, प्रतिनारायण, आदिकों की पदवी, स्त्रियों के विशेष भोगों की गणना से मिलती है, अर्थात् जो सब में विशेष विषयी हो उसे तो इन्द्र, उस से न्यून वाले को चक्रवर्त, तथा उससे

भी न्यून विषयी को नारायण और उससे कम विषयी को प्रतिनारायण कहते हैं।

समीक्षक—विषयी जनों को यह मत श्रेष्ठ लगता होगा, क्योंकि विशेष विषय करने वालों को ही इस में अधिक प्रतिष्ठा है, जैसेकि इन्द्र के (४८४४५००४२८५७१४०८८) स्त्रियां, और चक्रवर्त के ९६ अथवा ६४ हजार स्त्रियां, तथा नारायण के १६ हजार स्त्रियां, एवं प्रतिनारायण के केवल ८ ही हजार स्त्रियां होती हैं॥

विषय काल में प्रत्येक शरीर के चार २ हजार नवीन रूप धार कर नवीन २ प्रकार से देव स्त्रियां भोग कराती हैं, एक २ भोग का समय २००० वर्ष है। यह सारा लेख जैन प्रकरण सङ्ग्रह पृष्ठ १५५ में लिखा है।

समीक्षक—जैनेन्द्रादि (जैनी इन्द्र वगैरः) इतनी २ स्त्रियों से भी भोग में भूखे रहते थे, जब चार २ हजार गुणी नव यौवनाङ्गी नवीन २ वेष धारण करती थीं, और वीर्य की रुकावट में इतनी चतुर थीं, कि प्रति भोग दो हजार वर्ष में होता था, तब इनको समाधान होता था, परन्तु इन सबों को यह शिक्षा आदिनाथ तीर्थङ्कर ने दी होगी, क्योंकि इस विषय में जैनी इनको महा निपुण लिखते हैं।

एक जैनी ने अपनी माता और अपनी बहिन को निज स्त्री बनाया, और अपनी माता से एक पुत्र उत्पन्न

किया, ऐसा ही वाममार्गी भी मानते हैं "कि, मातरपि न त्यजेत्" अर्थात् माता को भी विषय करने मे न छोड़े। एक दिन उस की दूसरी स्त्री अर्थात् बहिन उस लड़के को खिलाते (रमाते) समय हास्य सहित कहने लगी कि—

भ्रातासि तनुजन्मासि वरस्यावरजोपि च ।
भ्रातृव्योसि पितृव्योसि पुत्र पुत्रोसि चार्भक : ॥
येश्च ते बालक पिता मम भवति सोदर: ।
पिता पितामहो भर्ता, तनय: श्वसुरोपि च ।
या च बालक ते माता सा मे माता पितामही ॥
भ्रातृ जाया वधू: श्वश्रू: सपत्नी च भवत्यहो ॥

भावार्थ—हे बालक तू मेरा भाइ, बेटा, देवर, भतीजा, चाचा, पुत्री का पुत्र है, तेरा बाप मेरा भाई, पिता, दादा, पति और पुत्र स्वं ससुर भी है । हे बालक तेरी माता, मेरी माता, दादी, भाई की बहू, मासु सौरव ये मेरे तेरे १८ सम्बन्ध हैं। र० को० भा० ५, पृष्ट ८०

समीक्षक—इस विचार के तो दो ही स्त्री थीं, अर्थात् एक तो बहिन और दूसरी माता, तथापि इतनेही विषय-भोग से जैन मत के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त हुआ (जैन जन लिखते हैं) पुष्प चूल और पुष्प चूला बहिन भाई स्त्री पुरुष बन के मरणान्त में मुक्ति को प्राप्त हुए, ऐसा जैन कथा रत्न कोश भा० ५ पृष्ट ७८ में लिखा है।

तीर्थङ्कर नङ्गे रहते और स्नान नहीं करते थे, इस बात को दोनों शाखाओं के पुरुष मानते हैं।

जैन मुनिराज प्रथम हड्डियों की मुण्ड माला पहिरते थे, इस से सिद्ध होता है कि अघोर पन्थ भी जैनियों से ही चला है ॥ दे० रत्न कोश भा० ७ पृष्ट ३३४ ॥

समीक्षक—यदि कोई यह शङ्का करे, कि अन्य साधु होंगे, तो इसने चन्द्रहास खड्ग जैन मत के अनुसार प्राप्त किया था, जो अन्य मतावलम्बियों को प्राप्त नहीं हो सक्ता, यह तो जैनियों में भी नारायणादि पदाधिकारियों को ही प्राप्त होता है—दे० जैन कथा रत्न को० पृष्ट ३३४।

जैन ग्रन्थों में लेख है कि जैन साधुओं के चाहे कितने ही प्रकार के रोग क्यों न हो जांय परन्तु निज २ थूक लगाने मात्र से ही सर्व रोग नष्ट हो जाते हैं !

समीक्षक—यह तो अच्छा जैन साधुओं के थूक में चमत्कार लिखा, कि जो सर्वथा असङ्गत है, प्यारे पाठको। आप कोई इन के इस धोखे में न आवें, किन्तु जैसा किसी के रोग हो, तदनुसार औषधिकर रोग निर्मूल करें और इस थूक रूप औषधि को ही जैनी जन क्यों नहीं मानते—शहर प्रति शहर में क्यों जैनऔषधालय खोल रक्खे हैं जैन मत में चिकित्सा नहीं मानते, क्योंकि इन के यहां लिखते हैं, कि वैद्यों की औषधि रोगियों को कदापि न देनी चाहिये, रुग्ण जन कितना ही रोगार्त क्यों न हो, महाशयो ! मनुष्यों ही के लिये औषधि वर्जित नहीं किया गया है, प्रत्युत छः मास के बालक को भी अत्तार आर वैद्यों की औषधि से वर्जित किया है, और

यदि बालक वा युवा पुरुष वैद्य और अत्तारों की औषधि से नीरोग भी हो जावें, तब भी जैनी नरक के भागी होंगे इस कारण से जैनियों के शरीरों के टूक २ भी हो जायें, तब भी औषधि न दे। दे०र०क० श्रावकाचार पृष्ट११० !

समीक्षक—वैद्य और अत्तारों को योग्य है कि जैनियों को औषधि द्वारा कभी भी नीरोग न करें, क्योंकि ऐसा करने से ये बिचारे नरक को जांयगे इस लिये इन की औषधि न करना ही श्रेष्ट है।

आषाढ़ भूती जैन मुनि महातपधारी सम्पूर्ण गच्छ (जमात) में शिरोमणि एक नट के यहां भिक्षार्थ गया (नट मद्य पी मांस खाता था) नट की पुत्री को देखकर मुनि राज का चित्त उस पर डिग गया, और कामदेव ने जो ज़ोर दिया तो यह नट बन गये और खूब कलाबाजी करते रहे, तथा उस नट पुत्री से इनका ऐसा प्रेम होगया कि एक क्षण भी उसे अपने से पृथक् नहीं करते थे, यद्यपि उसके साथ विषयभोगादि में निमग्न रहते थे, तथापि किञ्चित् भी कहीं को जाते थे तो उसे अपने साथ ही रखते थे। जैन कथा रत्न कोश भाग ५ पृष्ठ ५८

समीक्षक—यह तो जैन मुनि ने अपने अनुयायियों को शिक्षा दी है कि किसी चूड़ी चण्डाली चमारी इत्यादि जाति की भी यदि नवयौवनसम्पन्ना कुमारी हो तो उसके प्राप्तर्थ में यदि जप तप संयम नियमादि का त्याग भी होता हो तब भी उसे प्राप्त करे, क्योंकि जप तपादि से न

जानें कब सिद्धि हो, और विषयादि में तो इन्द्रत्वादि उपाधि [खि़ताब] और तत्काल सुख की वृद्धि होती है। "कामातुराणान्नभयन्नलज्जा"। अर्थात् कामातुर मनुष्यों के भय और लज्जा नहीं होती, इसी हेतु से इन्हों ने निर्भय और निर्लज्जता के साथ लेख लिखे हैं। संसार में अनेक मत प्रचलित हैं, उन सम्पूर्ण मतस्थों के विद्वानों के लेख देखो तो विषयादि जितने निन्दित कर्म हैं [कि जिनको जैनियों ने अपने जप तप का फल माना है] सबों का प्राय: खण्डन ही किया है, तो क्या अन्य मतस्थ विद्वान् जैनियों के विषयभोगादि में विघ्न डालने वाले ही हुए नकि शिक्षक ? नहीं २ पाठको ! कुत्सित बातों का त्याग प्रत्येक मतावलम्बी करते हैं परन्तु उस सत्य के सहारे से अवैदिक जनों ने यद्यपि अमान्य और असम्भव बातों की पृथा प्रचलित की है परन्तु इन्हीं जैसी पक्की छाती वाला साहसी कोई भी विषयादि असत्कर्मों को श्रेष्ठ मानने वाला नहीं निकला॥

देवसूरी जैनाचार्य प्रथम तो १५-१५ वर्ष की दो स्त्रियां निज विषयभोगार्थ रखता था, कामी इतना था कि कहीं को जाता, तो दोनों को निज स्कन्धों पर चढ़ा लेता था, (क्योंकि उसे यह भय था कि मेरे पश्चात् इन युवतियों पर कोई अन्य युवा पुरुष वा जैन साधु कहीं हाथ न डालदे) जब कोई उसे पूछता, कि मुनि जी महाराज ये कौन हैं, तो उत्तर देते थे कि जैन मत के प्रताप

से मुझे ये दो ऋद्धि और सिद्धि प्राप्त हुई हैं। परन्तु इन दोनों से जब विषयेन्द्रिय तृप्त न हुई तो ६को औरबढ़ाकर आठ एकत्रित कीं। जैन तत्वादर्श पृष्ट ४६८में देखोमहावीर तीर्थङ्करकी जो सुजेष्टा नामक अतिरूपलावण्यता-युक्त किसी राजा की पुत्री बाल्यावस्था में चेली होगई थी, नव यौवनसम्पन्ना होने पर उपरोक्त मुनि की कृपा से उस (राज कन्या) के गर्भाधान(कुछ काल में) प्रकट हुआ, तब सर्व नागरिक जनों ने गर्भ विषयक यत्र तत्र वार्तालाप (कानाफूसी) आरम्भ की, तब केवल ज्ञानीने कहा, कि एक वेदानुयायी सन्यासी एक भ्रमर (भौंरा) का वेष बनाकर गर्भ स्थापित कर गया है पुत्रोत्पन्न होने पर उसका नाम सत्तकी रकखा—कथा रत्न कोश भा० ५ में।

समीक्षक—भला स्त्री के साथ भ्रमर का मैथुन करना पुनः भ्रमर वीर्य से स्त्री के गर्भ रह कर मनुष्य उत्पन्न होना यह एक नवीन ढङ्ग की जैन साइंस है कि आप तो निष्कलङ्क हो जावें, और वेदानुयायों को बदनाम करें, सो जैन मुनि जी ! अपने मुंह मियां मिट्ठू बन चाहे लज्जित न होओ, परन्तु अन्यविद्वानोंके समक्ष तुम्हारी सब कलई खुलगई। अबआगे औरगज़ब हाल सुनो कि सुलसा (महावीर की ३३६००० श्राविकाओं की कमांडरानचीफ) के इन्हीं महात्मा की कृपा से एक दम ३२ पुत्र उत्पन्न हो गये। यह महावीर की बड़ी भक्तनि थी।

समीक्षक—कहिये मुनि महाराज ! इस सुलसा पर

किस मतानुयायी की कृपा हुई थी—किसी नरान्तकादि महा उग्र राक्षस का ही नाम लिख देते, कि जिसको बत्तीस पुत्र उत्पन्न होने का वरदान किसी जैन तीर्थङ्कर द्वारा था, उसने आकर बलात्कार जो इससे विषय किया, तो इसके ३२ पुत्र उत्पन्न हो गये, बस इतने लिखने में ही तुम बरी हो जाते, परन्तु तुम्हें भय किस बात का, प्रत्युत उपरोक्त राजकन्या के पुत्रोत्पन्न विषयक बात दूसरे पर डाली थी, पश्चात् में तुमने अवश्य पश्चात्ताप किया होगा क्योंकि तुम्हारे ग्रन्थानुसार कामविषय की वृद्धि की गणना के स्थान में एक अङ्क न्यून हो गया। पाठक वरो! अब इन्हीं मुनि महाराज की युक्ति देखो, इन्होंने "एक पन्थ दो काज" के तुल्य निज कल्पित कहानी ठानाङ्ग सूत्र पञ्चम भाग में लिख कर सिद्ध की है कि बिना मैथुन ही गर्भ ठहर जाता है। यह इनकी कैसी निज चेलियों के निष्कलङ्क करने की युक्ति है कि सम्यक्तया कामकी तृप्ति भी हो जाय, और कलङ्कित भी न हो परन्तु वह काम-सिद्धि (बिना गर्भाधान वाली) अब कहां को चली गई है। इन केवल ज्ञानी तीर्थङ्कर जी ने ठानाङ्ग सूत्र में स्त्रियों की योनि तीन प्रकार की लिखी हैं।

(१) कूर्मोन्नता = अर्थात् कछुए के सदृश उन्नत—

(२) शङ्खावृता = अर्थात् शङ्ख सरीखी—

(३) बनस्पत्रिका = बांस के पत्ते सदृश चपटी—

समीक्षक—ज्ञात हुआ कि वास्तव में उक्त मुनि जी

बड़े कामी व विषयी थे, क्योंकि योनि परीक्षा उसी को हो सक्ती है कि जो इस काम में सदा संलग्न रहता है ॥

यह तीर्थङ्कर महावीर जी अन्धेरी रात्रियों में निज तरुणा चेलियों के साथ अकेले रहा करते थे, एक दिन अति रूपवती मृगावती नामक चेली जो अति तरुणा थी, उसके साथ उक्त मुनि जीने अन्धेरी रात्रि में बहुत समय बीतने तक एकान्त सेवन किया, इस कृत्य को देख कर एक साध्वी चन्दनबाला ने उस मृगावती से क्रुद्ध होकर कहा, कि ऐसी बात तुमको न चाहिये, क्योंकि तू बड़े घराने की है। तेरे कुल को ऐसे आचरणों से कलङ्क लगता है। (जैन कथा रत्न कोश भा० ५, पृष्ट ७८)

और यह चन्दनबाला महावीर की ३६००० हजार चेलीयों मे ग्रामणी और अधिष्ठाता थी क्योंकि ये अपने गुरु के कर्मों से पूरी पूरी जानकार थी तबही तो मृगावती को एकान्त में गुरु के पास जाने से रोका नहीं तो क्यों मना करती इसने सोचा, कि यह मृगावती मुझ से युवा और अति स्वरूपवान है, कहीं ऐसा न हो, कि मेरे स्थान में यही उक्त तीर्थङ्कर जीकी प्राणप्रिया बनजाय अन्त मे दोनों को केवल ज्ञान हुआ ॥

एक जैनी एक अतिरूपवती नटनी को देख कर आप भी नट बन गया, एक दिन राजा अजात शत्रु की सभा में (जो जैनियों में बडा प्रतापी राजा महावीर का परम भक्त था) ये दोनों नट नटनी कला कर रहे थे,

राजा भी उस नटनी की विद्या वा यौवन रूपादि देख मोहित हो गया, नट ने बांस पर से देखा, कि तेरी नटनी पर राजा की दृष्टि पड़ रही है, और यह राजा इसे अति कठिनाई से भी नहीं छोड़ेगा, ऐसा विचार कर रोने लगा, पश्चात में बांस पर चढे २ ही केवलज्ञान होगया ॥ (देखो जैन कथा रत्न कोश भा० ५, पृष्ट १०५)

समीक्षक—अनेक जैनी प्राय: केवल स्त्रियों के वियोग कारण से अन्त में जब कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता तब केवलज्ञानी बन जाते हैं, प्रबल से जब नटनी अप्राप्त ज्ञात हुई तो अब क्या ये केवलज्ञान से भी जाते ॥

एक जैन साध्वी (जिस को सर्व जैनी अति श्रेष्टा और परम सती मानते हैं) सुकुमालिका थी, वह एकान्त में तप कर रही थी, वहां एक स्त्री ने आकर पांच पुरुषों से प्रसङ्ग कराया, उस समय उपरोक्त सती जी इस कृत्य को देखकर स्वयं कामातुरहो विचारनेलगी, कि इस स्त्री ने महा प्रबल तप किया है, कि जो पांच पतियों से भोग को प्राप्त है, इन भगवान की कृपा से ऐसादिन मुझेभी शीघ्र प्राप्तहो॥र०को०भा०५,पृष्ट१२०

समीक्षक—विषय क्रीड़ा तो जैन साधु साध्वियों के रोम २ में छाई हुई है, इन्हों ने इसी को परमैश्वर्य माना है ॥

सुभद्रा जिसको समस्त जैनी परम सती मानते हैं,

उस की ननद ने एक दिन जिनकल्पी साधु के साथ विषय कराते देख कर अपने भाई बोधदास से कहा, कि तेरी स्त्री सुभद्रा ने आज मेरे सम्मुख ही जिनकल्पी साधु से विषय कराया है ॥ (रत्न कोश भा० ५,पृष्ट ८५)।

समीक्षक—उपरोक्त कलङ्क मिटाने के हेतु जैन आचार्य लिखते हैं कि वह तो साधु की आंख से निज जिह्वा द्वारा तृण निकालती थी, सो यह इन का लिखना कैसा असङ्गत है, क्योंकि वह उसकी ननद कि जिस के सामने यह सारी लीला हुई क्या वह तृण के निकालने वा विषय कराने आदि को नहीं जानती थी? प्रिय पाठको! अब यह भी विदित हुआ, कि प्रथम जैनियों के यहां विषय में पुरुष नीचे और स्त्री ऊपर रहती होगी क्योंकि तृण निकालने का मिष तो ऐसा ही पाठ (सबक) दे रहा है ॥

और करनाटक देश मे जहां से जैन धर्म जारी हुवा सुन्ते है अब भी स्त्री पुरुषवत् पती पर आरूढ होती है ॥

एक जैनी राजा ने एक चमारी को अपने घर में डाल लिया, एक दिन मैथुन करते समय जब उन दोनों पर बिजली गिरी, तो मरकर भोग भूमि में जन्म लिया ॥

(समीक्षक—यह भोग भूमि चमारी के प्रसङ्ग से ही प्राप्त हुई ॥ जैन तत्वा दर्श पृष्ट ५ २६ ।

जितशत्रु राजा जो तीर्थङ्कर का अत्यन्ताज्ञाकारी था, उस ने अपनी प्यारी रूपवती पुत्री को अपनी स्त्री

बानया ॥ (दे० जैन तत्वादर्श पृष्ट, ५३०)।

समीक्षक—यह क्या इसी विचारे राजा ने ही एसी कृत्य की, जब उनके उपदेशक जैन मुनियों ने ही एतादृश पृथा चलाई है, तो इस विचारे का जैन ग्रन्थानुकूल दोष ही क्या हुआ॥

समीक्षक—पाठक वृन्द! श्वेताम्बरों से दिगम्बरियों के पृथक् होने का कारण केवल एक यही मुख्य प्रतीत होता है। क्योंकि वे इनके सदृश प्रकट होना नहीं चाहते होंगे किन्तु प्रतिष्टा भङ्ग न हो, इस हेतु से उनका तात्पर्य गुप चुप से कार्य करने का होगा॥

अमित गत्याचार्य दिगम्बराचाय जी कृतधर्म परीक्षा पुस्तक पृ० ६३ में (जिसका पन्ना लाल जैनी ने अनुवाद किया है) भोजन के अच्छे उपमा में, स्त्रियों के यौवन के समान सुन्दर और रसीले थे, एसा लिखा है॥

समीक्षक—पाठक गण! अब इन की परीक्षा कर लो, कि विषय भोगादि में इनका विरागथा, वा अनुराग यदि व्यभिचार में इनको अनुराग नहोता, तो "अच्छे भोजन रसीले हैं, स्त्रियों के यौवन वत्" एसी उपमा कदापि न लिखते। प्रत्युत इनका तो पूर्ण भाव से विषय वासना में अनुराग है, क्योंकि ये जैन तत्वादर्श पृ० ३१८ में लिखते हैं. काम जोश बढ़ाने के लिये जीवों को माजून बनाने में या उन से तेल पकाने में पाप नहीं है॥

यदि जैनियों को उल्लू आदि पक्षी, या पशुओं का मांस तथा कलेजा या अन्य अङ्गोपाङ्ग की आवश्यकता हो, तो भीलों से न लेवें। किन्तु दुकानदारों से मोल ले लेवें। जैन तत्वादर्श पृष्ठ ३६१।

समीक्षक—इस लेख से तो यह विदित होता है कि मांस के व्यापार में जो लाभ होता है, वह जैनियों के सहधर्मी व्योपारियों (कसाइयों) को ही हो, क्योंकि इन का कसाइयों से विशेष प्रेम था भीलों से नहीं—क्यों न हो मित्र को ही लाभ पहुँचाना योग्य है॥

गण धर आदि पूर्व धारक दशवें पूर्व में स्त्रियों से काम क्रीड़ा, विषयभोग करने, एवं वशी करन, मारन, मोहन, उच्चाटनादि विषयक अनेक शिक्षा लिखी हैं,।

समीक्षक—इस से स्पष्ट विदित है, कि वशी करण, मारन, इत्यादि पाखण्ड के कर्ता ये जैनी ही हैं, कि जिन की धर्म पुस्तकों में ऐसे २ कामों की शिक्षा लिखी है॥

एक पूर्व धारी जैनमुनि ने आठ स्त्रियों से विवाह किया, इस से विदित हुआ, कि जैन मुनियों में विवाह करने की भी प्रथा है यदि न होती, तो जैनी राजा निज पुत्रियों को साधुओं को क्यों देता, प्रत्युत जैन साधुओं में विवाह की प्रनाली न होती तो राजा इन्हें दण्ड अवश्य देता। देखो धर्म परीक्षा पृ० १६४॥

जैनियों के सिद्धान्त में वेश्याओं के नृत्य, तथा गान और विषय सम्बन्धी बातों से सब के आत्मा को प्रसन्न

करना, अतुल दान माना है (र० को० भा० ७ पृ० ५७)

समीक्षक—सत्य है, वेश्याओं का काम जो इस समय प्रचलित है, सो यह अतुल भण्डार इन्हीं के उद्यम से खुला है, वहां चाहे जो आकर एक दूसरे का परस्पर उपकार (काम) कर लाभ उठा ले जाय, इस में यदि भेट (फीस) का टंटा न होता, तो अब तक सम्पूर्ण जैनी इन्द्रादि पदवी के धारक हो जाते ॥

एक देव सिंह नामक राजा बड़ा पुण्यात्मा जैनी था, तीर्थङ्कर के सामने निर्लज्ज हो, स्त्रीवत् वेष बनाकर अत्यन्त हावभाव के द्वारा नृत्य के प्रताप से वह ७ वें स्वर्ग को गया ॥ (देखो जैन कथा रत्न कोश भा० ७,पृष्ट १३३) ।

समीक्षक—क्यों न हो, क्या केवल वेश्यायें ही नृत्य विषय व्यभिचार कर करा कर लाभ उठातीं, नहीं २ इस से तो विचारे लौंडों का हक मारा जाता, और इन के प्रवन्ध में बेइन्साफी होती, अतः पुरुषों क लिये भी इन्हों ने आज्ञा दे रक्खी है, और प्रत्यक तीर्थङ्कर कि मूर्त तक के सन्मुख जैनी अबतक लौंडों को जनाना वेष कर कर नचाते हैं न जाने जिवत पर तो क्या दशा होगी ॥

देव रथ राजाने भी जनाना वेष कर जैन तीर्थङ्करों के अग्रे नृत्य कर प्रसन्न किया ।। (र०को०भा०७,पृष्ट १३४)।

समीक्षक—मैं कहां तक कहूं भारत में लौंडों के नृत्य प्रवृत्त करने में जैन तीर्थङ्कर ही दृष्टि गत होते हैं,

क्यों कि अन्यमतावलम्बियों की धर्मोपदेश पुस्तकों में एसे २ लेख नहीं पाये जाते, इस से ज्ञात होता है, कि इनके उपदेश से ही यह कार्म चला है ॥

यात्रा समय में यदि वेश्या सामने आ जाय, तो जैन मनियो ने इसे महा शकुन बताया है, और यदि ब्राह्मण मिलजाय, तो महा अपशकुन माना है, ।

(दे० जै० क० र० को० भा० ७ पृ० १६३)

समीक्षक—यात्रा समय में यदि जैनियों को यथेष्ट सुख दाता प्राणप्रिया वेश्या जो इन के जीवन का हेतु है, वह मुसकुराती हुई आगे प्राप्त हो जाय, तो क्यों न ये महाशकुन मानें और ब्राह्मण सम्मुख मिलने से इस-लिये इन्हों ने अपशकुन माना है, कि ये पाखण्डमर्दक हैं कि जिन्हों से इन का चित खिन्न हो जाता है, कि यात्रा के आदि में ही पाखण्डमर्दक मिल गया, तो आगे हमारी दाल कैसे गलेगी ॥

एक जैन सिद्ध ने अपनी कामेच्छा पूर्ण करने के हेतु एक स्त्री को बुला लिया यह तो जैनस्त्रियों की दशा थी और सिद्ध की स्तुती नोकार मंत्र द्वारा की है।

समीक्षक—पाठकगण! क्यों स्तुति करने के योग वही पुरुष जैनग्रन्थानुसार है, कि जो निज शक्ति द्वारा पराई स्त्री को बुलावे। और जैन देवता भी कुट्टनपना करते थे जो सोती स्त्री सिद्धजीको लादी ॥

॥ अब जैनियों के स्वर्ग का भोग सुनो ॥

स्वर्ग में स्त्रियों को रान केले के स्तम्भ सदृश हैं, पतली २ लचकदार है कटि जिनकी, अति कोमल और नम्र हैं नितम्ब (चूतड़) जिनके, चन्द्रमा से भी अधिक है मुख की कान्ति जिन्हों की, मत्तहस्तीवत् है चाल जिन की, मगर में तगड़ियां पड़ी हुई जिन में कि अति उत्तम२ घुंघुरू बंधे हुए, कुचों की गोलाई पर मखमल की अंगिया (कांचली) जो अमूल्य रत्नों से मढी हुई, अशोक वृक्ष के समान है हथेली जिनकी, मालती की माला के सदृश भुजलता जिनकी, मूँगफली के सदृश हैं अङ्गुलियां जिन की, शङ्ख के समान है ग्रीवा जिन की, कमल से भी प्यारा है कण्ठ जिन का, कुन्द पुष्प के समान हैं उज्वल दन्त जिन के, बिल्लौरी दर्पण (शीशे) के समान हैं स्वच्छ कपोल जिनके, लावण्यता से दशों दिशा हैं पूर्ण जिन की, अति सुन्दर लाल २ मिश्री से भी अधिक मीठे हैं ओठ जिनके, बड़े तीखे बाणों के सदृश हैं नच जिन के, नेत्रों की रेखा कर्णगत हैं जिन की, कुचों के अग्रभाग गोल२ श्यामवर्न मुलायम२ चिकने २ भ्रमरों के समान हैं जिन के, लम्बे२ शिर में हैं केश जिन के, सम्पूर्ण शरीर पुष्पवत् कोमल है जिनका, अति मनोहर वाणी काम क्रीड़ा में निपुण, नाना विध आनन्द देने वाली, श्वास में है सुगन्ध जिनके, सौभाग्यवती, रूपवती, गुणवती देखने मात्र

से ही पुरुषों के अभिप्राय के जानने वाली, अति प्रवीण है बुद्धि जिनकी, इत्यादि ॥

पुनः जैनाचार्य जी लिखते हैं, कि यह उपरोक्त मृदु-वदनी स्त्रियां केवल जैनी संयमी साधु साध्वी, तथा संयमा संयमी अनुव्रत श्रावक श्रावका, अहिलक क्षुल्लक बाल-तपस्वी जैनी और अकाम निर्जरी (अर्थात् कितनाही कष्ट भोगना पड़े परन्तु जैन मत न त्यागें,) ऐसों को मिलती हैं ॥ (जैन पद्मपुराण पृ० २८० दिगम्बरी)।

समीक्षक—वास्तव में जैनाचार्यों के ऊपरी आचरण और हैं, और अन्तर में विषयादि कुत्सित सामग्रियों से पूर्ण हैं. क्योंकि इनके लेख ही इस विषय में साक्षी दे रहे हैं, यह ऊपर से मलिन, हृदय से मलिन, उपदेश मलिन पुनः न जानें किस गुण वा पुण्य से स्वर्ग में जाने को अपने आपको लिखते हैं,प्रत्युत यह तो कुपढ़ वा किश्चत् पढ़े (चिट्ठी पत्री वा देन लेन आदि लिख जानने वालों को जो जैन पुस्तक नहीं विचार सकें, वा उनमें सत् असत् पदार्थ यथार्थ नहीं जान सकें ऐसे पढ़े) इन्हीं को धोखा देना है. कि चाहे जितना इस जन्म में कष्ट पाओ, परन्तु जैन मत न छोड़ो, क्योंकि जैन मत में रहने ही से मरणान्त में तुमको उपरोक्त स्त्रियां प्राप्त होंगी, इस लालच से विचारे हठधर्म में पड़े रहते हैं ॥

८वैन्द्रचक्र महिमा नवमेव मान काऽन्द्रचक्र भक्तेन्द्र शिरोर्चनीयम्। धर्मेन्द्र चक्र मधरीकृत सर्व-

लोकं लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥

(देखो र० करंड श्रावकाचार पृ० १६३) ॥

प्रिय पाठकगण! यह जैनमत अठपहलू लोटा के सदृश है कि जिसमें सबको (चाहे जैसा कुपात्र हो उसको भी) आश्रय मिलता है, जैसेकि जब जैन गुरु गृहस्थ को सम्यक्त्व देते हैं, तो उसको दश(१०)आगार बतलाते हैं यदि इन दश कारणों में अनुचित भी कार्य करले, तो कुछ उसे जैनधर्मानुसार दोष नहीं है ॥

(१ आगार) रायाभिउगेणं=राजा जो कुछ करावे, कर लेवे, पाप नहीं होता।

(२) गणाभिउगेण अर्थात् पञ्चायत वा बरादरी जो कुछ करावे करलेवे, कुछ पाप नहीं, नहीं तो वे जाति में पतित कर देंगे।

(३) बलाभिउगेण अर्थात् जोरावर जो करावे वह कर लेवे उसमें दोष नहीं।

(४) देवाभिउगेण अर्थात् कोई देवता भूतादि शरीर में प्रवेश होकर जो कुछ कुकर्म करे, वा करावे, तो कर लेवे उसमें दोष नहीं (वाह क्या खूब जैन देवता भी कुकर्मी होते हैं)।

(५) गुरुनिग्गहेणं अर्थात् जो जैनधर्म को हानि पहुंचावे, उसके साथ कैसाही पाप कर्म करो दोष नहीं अथवा जैन गुरु के आग्रह करने पर जो अनुचित कर्म करे तो पाप नहीं।

(६) वितिकं तारेणं अर्थात् धनोपार्जन करने में जो पाप करना पड़े उसमें दोष नहीं।

(७) अन्नत्थणाभोगेणं अर्थात् कोई काम अनजानपन से या करने के पश्चात् स्मरण आवे, उसमें पाप नहीं।

(८) सहस्सागारेणं अर्थात् मन में जानता हुआ भी (कि यह काम करने के योग्य नहीं है. परन्तु) संयोग मिलने, और भोगों के अभ्यास से पाप कर्म करे, तो पाप नहीं। (६) महत्तरागारेणं अर्थात् कोई बड़ा लाभ हो, अथवा केवल ज्ञानी (अति ज्ञानी) की आज्ञा से पाप कर्म करे तो पाप नहीं।

(१०) सव्वसमाहिवति आगारेणं अर्थात् रोगादि अनुचित कर्म होजावे तोभी पाप नहीं।

(देखो जैन तत्वादर्श पृ० ११६)॥

जैनी उन पापों का प्रायश्चित्त करे, कि जिसको किसी ने देख लिया हो, और यदि किसी ने पाप करते न देखा हो. तो प्रायश्चित्त न करे॥(जैन तत्वादर्श पृ: ४७६)

समीक्षक—वह राजा ही क्या, कि जो अनुचितकर्म करते हुओं को न रोके, परन्तु कदाचित् जैनियों में ऐसे ही राजा हुए वा होते हों, कि जो पाप रूपी वृक्षों में पुण्य को टटोलते हैं। भला कहीं पञ्च अनुचित कर्म करने की आज्ञा देसक्ते हैं यदि देते हों तो वे पञ्च ही क्या॥

बादशाही यवनों के समय में बलात्कार से यवन मज़हब में आने को अति उद्यम किया गया था, परन्तु

उस महाभयोत्पादक समय में भी अधर्मी डरपोक वा लोभी जन ही हुए थे, क्या आप हकीकत राय तथान्य राजकुमारों के इतिहास भूल गए हो, कि वे दीवाल आदि में भी चुनवा दिये गए, परन्तु जोरावरों के पाप रूप कथन की उनहोंने कुछ भी परवाह न की, यह तो जैनी ही ऐसे हैं, कि जिनहों में धर्माधर्म का कुछ भी विवेक नहीं है, इनहोंने तो स्वार्थ सिद्धि को ही अपना परम उद्देश्य माना है भूतादि का मिष (बहाना) लेकर यदि कोई जैन कपटी विषय भोगादि भी करे, तो पाप नहीं, यह कैसा अच्छा विषयियों के लिये व्यभिचार का द्वारा इनहों ने खोल रक्खा है ॥

यह दोनों जैन और यवन इस बात में सहमत हैं, कि निज मत से विरुद्ध वालों को कितनाही कष्ट दिया जावे, परन्तु उस में पाप नहीं होता, और वे कैसे पापा नुरक्ती गुरू हैं, कि जो पापाचरण करने में पाप नहीं बतलाते बस ऐसे गुरूओं का तो "दूरतः परिवर्जयेत्" दूर ही से त्याग अर्थात् अदर्शन होनाही अच्छा है ॥

वाह यह अच्छा जैन सिद्धान्त है, कि चोरी, यारी (जारी) आदि चाहे जो कुत्सित कर्म्म करना पड़े उसे करके धन कमा लेवे, अर्थात् जैनियों ने टका कमाने को ही अपना धर्म्म कर्म्म तथा परम पद माना है ॥

सत्य तो यह है कि जैनियों के धन, विषयभोग भोगों का हरण करे, अब जैनी कुछ कहें, तो कह देवे

कि मैंने यह अनजान पन से किया है अथवा यह कह देवे कि इस अमुक कर्म्म करने के पश्चात् अब हमें भी यह बोध हुआ है, कि मैंने यह काम अति बुरा किया है, बस इस कथन मात्र से ही जैनी उसे छोड़ देवें और उसको ग्रहण की हुई वस्तु को उसे देदें क्योंकि उस दशा में वह जैन मतानुसार पापभागी नहीं रहा ॥

जैनियों की रुपयों वा आभूषणादि बहुमूल्यवान् वस्तुओं की थैली, यह जानता हुआ भी कि इस कर्म्म (चोरी) में पाप है तथापि इस संयोग में, कि माल, मालिक की दृष्टि इधर उधर देखे, तो लेले । और यही भोगों के अभ्यास की प्रैक्टिस है, इसपर यदि कोई जैनी कुछ कहे तो यही आठवां आगार खोलकर दिखा वा पढ़ादेवे ।

कुकर्म्मरतों में जो शिरोमणि (केवल ज्ञानी) हो, उस से आज्ञा लेकर लेआवे कि जो केवल ज्ञानी जी के अर्थ भी आया करे जब कोई जैनी कुछ कहे, तो ८ वां आगार सुनादे अधिक विषयादि कर्म से यदि रोगार्त भी हो जाय, तब भी वह पापाचारी जैन सिद्धान्तानुसार नहीं गिना जासक्ता, कहिये पाठक वृन्द ! यह जैनमत अठपहलू लोटा के सदृश है या नहीं, फिर भी शर्त यह है कि यदि पाप कर्म्म करते हुए को कोई देखे तो प्रायश्चित्त करे, सो यह प्रायश्चित्त ही क्या केवल आगार मात्र ही सुना देना है जिस प्रकार कि यवनों में "तोबा" कह देना ही प्रायश्चित्त मान लिया है ॥

एक जैनी ने एक जैनमुनि को आहार दिया था कि जिससे उसे ३२ स्त्रियां अति रूपवती प्राप्त हुईं।

(देखो जैन योग शास्त्र पृ० २६५ ॥)

समीक्षक—यह उपरोक्त लेख भोजन लेने की युक्ति में अच्छा है, क्योंकि इन्हों ने निज सेवकों को सुन्दर स्त्रियों के प्राप्त होने के लोभ में फंसा दिया है॥

जैनमत में ४ सङ्घ हैं जिन्हों में देवसङ्घ सब से बड़ा है कि जो वेश्या के घर में निकला है।

(देखो शान्तिविजय जैनी कृत मानव धर्म पृ० १९८) ॥

समीक्षक—क्यों नहीं भला वेश्या जोकि इनकी परम इष्टा हैं उनके यहांसे जो सङ्घ निकला क्या उससे अधिक और कोई सङ्घ होसकता है?

अब जैनियों में मांस का विधान दिखाते हैं॥

(१) प्रत्येक तीर्थङ्कर को आवश्यक है (अर्थात् तीर्थङ्करों पर फ़र्ज़ है) कि गाय पुच्छ के चंवर ६४ उनपर हों

समीक्षक—इसी से यह लोग चंवर रखते हैं कि जो एक गाय से एक चंवर बनता है॥

(२) शङ्ख बजाना भी इन्हीं से चला, क्योंकि प्रथम चक्रवर्त को जो जैनपुस्तकानुसार जैनी ही होता है, उसे शङ्ख और चर्म आवश्यक रखना होता है, इस से तो यह विदित होता है, कि जैन चक्रवर्ती राजा, मुख में हाड़ (शङ्ख) और अङ्ग में चर्म धारण करे॥

(३) कौड़ी जो हाड़ की होती है, यह भी जैनी राजाओं से प्रचलित हुई। कौड़ी शब्द पराकृत भाषा है जो पराकृत जैनयों के ही हिस्से में आई है वैदिक ग्रन्थों में इसका नाम तक नहीं है॥

(४) जैनी कहते हैं कि महावीर आदि की हड्डी की पूजा(यानि दांतो की)देवता करते हैं जब देवता हड्डी पूजे तो ग्रहस्थी उसको अवश्य ही प्रेम करेंगे॥

(५) राजा श्रोणिक जो जैन मत का प्राणवत् है, वह मांसाहारी हुआ है, क्योंकि जब उसके पुत्रका अङ्गुष्ट पक गया, और उसमें राद पीब अधिक हो गई तो श्रोणिक ने निज मुंह से चूस २ कर अच्छा किया था, भला बिना मांसाहारी के कौन ऐसे दूषित कर्मों में प्रवृत्त होता है॥

(६) प्रथम जैनी, मुराड माला भी धारण करते थे, जैसा कि मैं प्रथम लिख चुका हूं॥

चीरकदम्ब नामक जैनोपाध्याय ने अपने तीन शिष्यों को मुर्गियों के मारने की आज्ञा दी, और अन्त में ये उपाध्याय बड़ा मुनि राज हुआ।

समीक्षक—जैन ग्रन्थानुसार कुकर्मों से अधिक प्रतिष्टा होती है, फिर भला उस का फल मुनिराज होना ही था, यद्यपि जैन तत्वादर्श में किसी जैनी ने निज मत के दोष छुपाने के कारण पीठी के मुर्गे लिख दिये हैं। परन्तु असल कभी नहीं छुपता, भला क्या पीठी के

मांस कुटवाया था, शेष सभी मांसों के खाने की आज्ञा थी, फिर भी यह राजा मृत्यु होने के पश्चात् स्वर्ग को गया जैन जन बतलाते हैं। (र०को०भ०५, पृष्ट५१)।

समीक्षक—सत्य है, जैनियों के यहां तो मांस मद्य मैथुनादि दुष्कर्म ही स्वर्ग के मूल हैं॥

चीन आदि देशों में कुत्ता बिल्ली चूहे छूंस आदि जीवों को बौद्ध जन खा जाते हैं. इसी प्रकार पुराने जैनी भी करते थे, प्रत्युत मनुष्यमांस तक को भी नहीं छोड़ते थे, क्योंकि सिंह शिवदास (सौ दास) अति प्रतिष्ठित घराने का जैनी था, जो बालकों के ही मांसों को खाता था, वह लाखों बालक खागया। (जैन पद्म पुराण पृष्ट ४२१)।

समीक्षक—जैनीजन ऐसे दुराचारी पापविहारी परमहिंसक मांसभक्षक को ही अन्त में सद्गति को प्राप्त हुआ लिखते हैं, तो न जानें ये कैसों को नरक का अधिकारी समझते होंगे॥

अर्हि देव और महि देव इन दोनों जैनमतावलम्बियों के यहां नित्य प्रति मछलियां पका करती थीं।

(देखो जैन पद्म पुराण पृष्ट ७५८)।

समीक्षक—इनके यहां मछलियां क्यों न पकतीं, क्योंकि इन्हों ने तो केवल कौवे के मांस को ही अग्राह्य समझा है॥

दिगम्बर शाखा के साधु अब तक भी गाय पुच्छ को अपने सङ्ग रखते हैं, और कोई साधु मोरपुच्छ ही रख-

ता है। जिस प्रकार निज बच्चों में प्रेम बन्दरियों में विशेष पाया जाता है कि बच्चा मर जाने पर भी उसे न त्याग कर कुछ काल बग़ल में दबाये फिरती हैं, तद्वत् ही यह जैन जन भी मांस में अधिक रुचि गोपुच्छादिकों के द्वारा दर्शाते हैं॥

दो उत्तम जैनियों ने दो बकरों की ग्रीवायें काटीं, और उन रुधिर बहते हुए बकरों में एक २ घुस गया उन दो जैनियों में से एक ने अपने बकरे के काटते समय में नवकार मन्त्र भी पढ़ा था, कि जिसके प्रताप से वह बकरा अति विभूतिवाला देवता हुआ, पुनः वह बकरा धन्यवाद देने के हेतु, उस अपनी ग्रीवा काटने वाले जैनी के चरणों में गिरा, और विनय की, कि महाराज आप के प्रताप से मुझे स्वर्ग मिला।(रत्न कोश भाग१, पृष्ठ४८)

समीक्षक—जैनी जन नवकार मन्त्र से पशुओं को मार कर स्वर्ग पहुँचाना मानते है, और मुसलमान बिस-मिल्लाह कह कर पशुओं के हनन को जन्नत(स्वर्ग) कहते हैं, संसार में इन दो मतों ही से मांस भक्षियों की वृद्धि हुई है॥

तीर्थङ्कर कृत भगवती सूत्रादि पुस्तकों में ऐसे लेख (उपदेश) कई स्थानों में आते हैं कि, "हड्डीर त्यज्या मांस २ भुञ्जन्ति" साधु अस्थियों (हड्डियों) को छोड़ मांस भक्षण कर ले।

समीक्षक—इस तीर्थङ्करोक्त उपदेश से जैनानुयायियों

छठेआरे में सम्पूर्ण जैनादि मतस्थों को मांस खाना लाजिमी होगा ।

समीक्षक—यहां के मांसभक्षक प्रेक्टिस वाले जैनियों को तो छठे आरे में (कि जहां सर्व जैनियों को मांस खाना अति आवश्यक होगा वहां) लाभ पहुँचेगा, और जो वर्तमान समय में मांस से बचे होंगे, उन विचारों को वहां नई तजरुबेकारी हासिल करनी पड़ेगी ॥

पाठक वृन्द ! उपरोक्तादि मांसविधायक वृत्त जैन-पुस्तकों में अनेक हैं, उन सबों का लिखना केवल पुस्तक का बढ़ाना है, अतः बुद्धिमानों के प्रबोधार्थ वा जैनमत मीमांसा के हेतु, कि इनका ऊपर और से जीवरक्षा, और आभ्यन्तर ओर से जीववध का भाव है या नहीं, इस निदर्शनार्थ जैन ग्रन्थानुसार किञ्चित् लेख सङ्केतवत् (नमूना के तौर पर) लिख कर दिखाया गया है, कि इन का मत मिथ्याचार मूलक है, कि जिस से मन वा आत्मा का कल्याण कदापि नहीं हो सक्ता, इस लिये मैं समस्त जैनी भाइयों से प्रार्थना करता हूँ, कि यदि आपको सत्य और असत्य की विवेचना करनी है, तथा कुसङ्ग कुव्यसन से पृथक्रह कर सद्धर्म में आना है, एवं सुख शान्ति और आत्मोन्नति प्राप्त करनी है, कि जो मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश्य है, तो सर्व हितकारक निरपक्ष वैदिक सिद्धान्त को जो कि ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् ब्रह्मविद्या पूर्ण है, उस का निज मत से साक्षात्कार (मुकाबला) करके निम्न-

लेखानुसार वेदादि वाक्यों द्वारा शिक्षा ग्रहण करो। यत: जैसे कि—

"गां मा हिꣳसीः, अविं मा हिꣳसीः, इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुम्। अश्वं मा हिꣳसीः, मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व। इमꣳ साहस्रꣳ शतधारं मा हिꣳसीः" यजु० अ० १३ मं० ४३। ४४। ४७। ४२ ४८। ४९॥

"य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयञ्च ये क्रविः। गर्भान खादन्ति केशवास्तानि तोनाशयामसि" अ० ८। १६। ३ २३॥

अर्थात् गौ भेड़ बकरी पक्षी अश्व को मत मारो। अय मनुष्य! झुण्डस्थ मृग की रक्षा करो, दुग्धप्रद तथा अन्य पशुओं को मत मारो। जो कच्चा मांस वा किसी के हाथ से बनाया अथवा कूटा हुआ और अण्डों को खाते हैं, उन दुष्टों को दृष्टिगोचर मत करो, इत्यादि श्रुतियों तथा निष्कपट आर्ष पक्षपातरहित मन्वादि स्मृति, तथा महाभारतादि सद्ग्रन्थों में मांस का पूर्णतया खण्डन है, इस लिये इसे त्याग कर—

"अहिंसा परमो धर्मः"

(अर्थात् किसी जीव को न सताना ही परम धर्म है)

इस वाक्यानुसार आचरण करे, न कि कथन मात्र ही करे, तब धर्म्मात्मा होसक्ता है, इत्यादि शान्तिप्रद सकलोपकारी शिक्षा को हृदय में स्थापित कर सबको पवित्र जीवन बनाना चाहिये ॥

जैन धर्म में सत्य बोलना पाप और झूठ बोलना महा पुण्य

एक कौशिक साधु जो जैनी नहीं था, गङ्गा के तट पर निवास करता था और अत्यन्त सत्यवादी था, उसकी सत्य की धूम चतुर्दिक् छारही थी, तथा वह सन्तोषी ब्रह्मचारी, शीलवान् आदि सद्गुणसम्पन्न ममतारहित था, क्षुधा के निवृत्यर्थ गिरे हुए फलों का आहार किया करता था, एक दिन उनके निकटस्थ किसी ग्राम में डाका पड़ा, तो नागरिक जन जाग्रत होगये, और चोरों के पीछे धाये, परन्तु चोर उस कौशिक के निकट होकर निकले थे, पश्चात् उन दौड़ते मनुष्यों ने आकर कौशिक जी से पूछा कि महाराज! क्या इधर लोग गये हैं, तब कौशिकजी ने उत्तर दिया किहां कुछ मनुष्य गयेहैं हां के कहते ही से वह अतिघोर नरकको गया॥ (जै:यो:पृ:१६६)

समीक्षक—जैन योग शास्त्र के रचयिता हेमचन्द्राचार्य्य को यह कैसे निश्चय हुआ, कि वह महायोग्य सत्यव्रतधारी कौशिक नरक को गया और पुन: उस हां! अर्थात् सत्य के कथन से, और जैनी मनुष्यों के निराप-

राध बालकों को मारमार खाखाकर मुक्ती को। रत्नकरण्ड श्रावकाचार पृ० ७४ में लिखा है, कि अति झूठ का त्याग है, परन्तु झूठ बोलना सर्वथा त्यागनीय नहीं है।

समीक्षक—इससे तो यह सिद्ध हुआ कि जितने झूठ की आवश्यक्ता हो वह तो सूक्ष्म और जो उससे विशेष हो, कि जो काम में नहीं आता, क्योंकि स्थूल (विशेष) और सूक्ष्म झूठ को सीमा (हद) पृथक् २ इन्हों ने नहीं बांधी, कि यह झूठ स्थूल और सूक्ष्म है॥

एक समय केवल ज्ञानी गौतम जी ने जबकि आनन्द जैनी के घर खबर लेने गया था झूठ बोला था, तो अन्य विचारे घसखुदों (अर्थात् छोटों) को कौन पूछे॥

यदि कोई किसी को मार डाले और न्यायधीश (राजादि) यदि जैन साधु वा गृहस्थ को साक्षी (गवाही) के अर्थ बुलाकर पूछे तो जैनी झूठ बोले, यदि सत्य बोलेगा तो महापातकी समझा जायगा।

समीक्षक—धन्य है जैनियों की न्याय बुद्धि को॥

॥ अब जैनियों की पितृभक्ति को देखिये॥

साढ़े बयासी ८२॥ रात्रि के पश्चात् महावीर तीर्थङ्कर हो निज माता पिता को पतित जान दूसरे की देह में गये थे, तब अन्यों की क्या कथा॥

कौणिक जिस को अजातशत्रु भी कहते हैं, यह बड़ा सम्यक्ति जैनी था, इस को जैनपुस्तकों में अति

प्रशंसा लिखी है, इस ने अपने पिता श्रोणिक को पिंजरे में बन्द करके बड़ी दुर्दशा के साथ प्राण लियेथे, इससे तो यही विदित होता है, कि जैनियों के सङ्ग कोई उपकार न करे, क्योंकि बाल्यपन में जिन माता पिता ने परोपकार जान इन्हें पाला था, उसके प्रति फल (एवज़) में जब जैन निज पिता से ऐसा द्वेष समय (वक्त) मिलने पर अर्थात् निर्बलताऽवस्था में किया था, तो अन्य जनों के सङ्ग तो न जानें कैसे पेश आवें, अर्थात् ऐसे दुःस्वभाववालों से बचना चाहिये ॥

अभय कुमार उत्तम जैनी महावीर के शिष्य ने अपने मित्र को उपदेश दिया है कि तू अपने पिता को अति कष्ट दे, तो तेरे पाप दूर हों, अभय कुमार के कहने से उसका मित्र असह्य कष्ट निज पिता को देने लगा, लवण के तोबरे चढ़ाये, मिर्चों की धूनियां दीं, प्रतिदिन इन्द्रायण के कटु फलों को भोजनार्थ देता था, अत्यन्त उष्ण खौलते (उबलते) हुए जल में गोते लगवाता, सम्पूर्ण शूकरादि घृणित जीवों की विष्टा से सारे शरीर में लेप कराता, कांटों के बिछौनों पर सुलाता, शरीर में सुइयां गाड़ता, मूत्र को पिलाता, गाली गलौच और धमकी दे दे कर डराता, यहां तक कि एक दिन अपने पिता पर कुल्हाड़ा लेकर दौड़ा, और उसके पैर को काट डाला, जब वह तड़फने लगा उस समय यह अतिप्रसन्न हुआ, और हंस कर बोला कि ओ दुष्ट अभी से घबराता है,

जब अभयकुमार मित्र ने यह बात सुनी, कि मेरे उपदेश से मेरे मित्र ने यथोचित् व्यवहार वर्ता है, तो अति प्रसन्न होकर उसकी पीठ ठोकी, अर्थात् उसे बड़ी बहादरी वा स्यावाशी का तमग़ा दिया, और कहा कि अब तू धर्मात्मा जैनी है तेरी गती में संशय नहीं पुनः अन्त को दोनो मित्रों ने सद्गति पाई। (जै: यो: शा: पृ: १५५)॥

समीक्षक—लो पाठक गण, अब तो समझ गये, कि ये ऐसी निर्दयता तो निज पिता से व्यवहार में लाते हैं, जो अन्य उपकारकर्त्तारों के सङ्ग यदि इस से विशेष कुव्यवहार करें, तो क्या आश्चर्य है, मेरी रोमावली तो इनके योग शास्त्र के बांचने मात्र ही से चकित हो गई है, और यह स्वतः उपदेश होगया है, कि इनके सङ्ग से परमात्मा बचावे। प्रिय पाठक वृन्द ! यह इनकी कुगति क्यों हुई, केवल अवैदिक शिक्षा से, यदि ये वैदिक शिक्षा से शिक्षित होते, तो जो वैदिक सिद्धान्तानुसार तीर्थ वा देववत् पिता है कि जिस को पूजा अर्थात् यथोचित सत्कार करना चाहिये था, उसे कदापि दण्ड न देते, और न मित्र ही इस प्रकार की सिक्षा दे सक्ता था॥

प्रक्रूर कुमार जैनी अपने वृद्ध पिता को छुरी से बध करने के निमित्त दौड़ा (जै: क: र: को: भा: ७ पृ: २००)।

समीक्षक—इसको धन्यवाद है, कि अन्त में इस ने अपने क्रोध को शान्त कर लिया, कि जिसके फल से उतना (कौशिक के मित्र के समान) पापभागी नहीं हुआ॥

नीराङ्गद राज कुमार जो सम्यक्ति जैनी था, उसने अपने पिता की आज्ञा को भङ्ग करके एक राज्यापराधी डाकू को सहायता देकर बचाया। (जै:क:र:को: भा:७ पृ:१५२)।

समीक्षक—इस विचारे राजकुमार ने केवल पिता की आज्ञा ही भङ्ग की, किन्तु उसे दण्डादि नहीं दिया, अथवा इस से इसका पिता दृढाङ्ग होगा, कि जिस से इसका वश नहीं चला, और डाकू की सहायता करनी तो इनके ग्रन्थानुसार धर्म ही है, क्योंकि असत् कर्मों के प्रचार में दत्तचित्त होना ही इन्हों ने अपना मुख्य कर्तव्य कर्म माना है नीराङ्गद की प्रशंसा जैनग्रन्थों में बहुत है॥

॥ अब जैनियों के पक्षपात को देखिये ॥

एकज्जिणस्सरूवं वीय उक्कस साव पाणं च अंवरट्ठियाणत्तिदं य च उत्थं पुण लिङ्ग दंशणं नत्थि॥

जैनी साधु वा जैन गृहस्थी (चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष उस) के अतिरिक्त अन्य किसी की प्रतिष्ठा न करनी चाहिये। (देखो रत्न करंड श्रावकाचार पृष्ट ५८)।

समीक्षक—इस से स्पष्ट विदित है, कि चाहे अच्छे से अच्छा कैसा ही उत्तम धर्मात्मा इन से भिन्न द्वितीय सम्प्रदाय का क्यों न हो, उसका तिरस्कार करना, और निज अमान्य कुभद्र जनों ही का सत्कार करना वा करवाना इनका परम धर्म है॥

भया शास्ने ह लोभान कुदेवागम लिङ्गना
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्ध दृष्टयः

(देखो रत्न करंड श्रावकाचार)

अर्थात् भय से, दण्ड से, लोभ से, किसी धर्म के विद्वानों को, अथवा पुरुषों की सेवा वा सत्कार न करनी चाहिये, प्रत्युत प्रणामादि भी न करे।

समीक्षक—देखिये यह कितने अधर्म की बात इन्हों ने स्वीकार की है॥

॥ अब जैनियों के शौच को देखिये॥

जल के तुल्य कोई भी अपवित्र वस्तु पृथिवी में नहीं है, लोक में जो यह आठ प्रकार का शौच अर्थात् काल १, अग्नि २, भस्म ३, मृत्तिका ४, गोमय ५ (गोबर), जल ६, पवन ७, ज्ञान ८, मानते हैं, वे नितान्त भूल में हैं, क्योंकि ये वस्तु किसी प्रकार किसी को शुद्ध नहीं कर सक्तीं।

दे० (रत्न कोश श्रावकाचार पृष्ट ३० से ५० पर्य्यन्त)।

समीक्षक—यदि अग्नि, जल, भस्म, मृत्तिका, पवन, आदि को अपवित्र जैनी जन मानते हैं, तो मृत्तिका पवनादि को क्यों स्पर्श करते हैं, और फिर अग्नि को क्यों व्यवहार में लाते हैं, एवं यदि ज्ञान अपवित्र है, तो इस का पुस्तकों में अथवा पवित्रात्मा से क्यों सम्मेलन करते हैं, और इन उपरोक्त आठ वस्तुओं से भिन्न अन्य कौन सी वस्तु पवित्र है॥

जैन मत में पलक उठाने मे केवलज्ञान, वा मुक्ति

जैन तीर्थङ्कर के स्थान को देखने मात्र से पन्द्रह सौ (१५००) तपस्वियों का समुदाय केवलज्ञानी होजाता है।

समीक्षक—ज्ञान को तो जैनी अपवित्र मानते हैं, तो पुनः इस के उपलब्ध करने से क्या प्रयोजन ॥

जैन मत में अपघात से मरना मुक्ति का साधन माना है, जिसको जैनी सन्यास कर्म और संथारा कहते हैं, अर्थात् अन्न जल त्याग कर मर जाना, यह तो धर्म वा न्याय और राजनीति से विरुद्ध है, प्रत्युत अकाल में स्वयं प्राण त्याग देना यह महा पातक है, मुक्ति का साधन नहीं ॥

॥ अब जैन मत के आचार्यों की हिंसा देखो ॥

यदि जैन साधु को जैनमत से गिरा हुआ देखे, तो उसे आचारी (आचार्य) लात घूँसा मुक्की वा दण्डादि से इस प्रकार दण्डित करे, कि वह कांपने लगे, और उस पर आचारी का ऐसा प्रभाव (रौब) पड़े कि जैसे गीदड़ सिंह को देख कर मांस उगल देता है, इसी प्रकार आचारी को देख कर वह भयभीत हो जैनमत को पुनः स्वीकार कर लेवे ॥ (रत्न करंड श्रावकाचार पृष्ट २०६)।

समीक्षक—बलात्कार (ज़बर दस्ती) से निज मत में लाना जैन और मुसलमानों ही में देखा ॥

॥ जैन साधुओं के दोष छिपाने में धर्म॥

यदि जैनी साधु कुकर्म करे, तो दूसरों से न कह-कर छिपावे, ताकि जैन मत की निन्दा न हो, और जैन-आचारी (साधुओं का साधु) किसी साधु को कुकर्म करते देखे, तो भी किसी से न कहे। (र: क: आ: पृष्ट २०७)।

समीक्षक—इस उपरोक्त जैन लेख से तो यह ज्ञात होता है, कि अपराधी से कुकर्मों की वृद्धि करावे, क्योंकि जहां कुकर्मों से छुड़ाने का प्रयत्न नहीं है, वहां सुकर्मों की उत्पत्ति कैसे हो सकेगी, आचार्यों का सुमार्ग में प्रवृत्त करने का ही काम है, यदि यह न हो सका, तो आचार्य और शिष्यपन यह दोनों निष्फल हैं। आचारी को उचित है कि कुकर्मों के कर्मों से सबको ज्ञात करावे और उसको पदच्युत करे अथवा निकाल दे॥

जिस समय जैनी भोजन करें, तो प्रथम प्रत्येक ग्रास को नासिका से सूँघ कर पश्चात् मुख में दिया करें॥

(जैन तत्वादर्श पृष्ठ ५६०)।

समीक्षक—ग्रासों को सूंघ २ कर भोजन करना चि-कित्साशास्त्र जोकि शारीरिक सुधार का मुख्याङ्ग है उस से नितान्त विरुद्ध है, परन्तु कुछभी क्यों न हो, ये तो उल-टे ही चलेंगे, जैसेकि सर्व संसार हाथधोकर पानी पृथिवी पर डालता है, परन्तु यवनलोग हाथ धोकर पानी को कुहनी (जो बाहु के लचक का स्थानहै उस)पर डालतेहैं॥

जैनियों के गृह और आंगन में केला और अनार के वृक्ष नहीं लगाने चाहियें, क्योंकि इनके लगाने से गृह का नाश होजाता है ऐसा जैन तत्वादर्श में लिखा है ।

समीक्षक—गृह नाम तो रहने के स्थान का है, बाग़ में भी माली रहता और उसका घर बाग़ ही है, उस घर के आंगन में ही केला और अनार ही क्या, किन्तु सैंकड़ों प्रकार के वृक्षों को लगाकर नाना प्रकार के फल फूल उत्पन्न कर २ के बाग़ की उन्नति करते हैं, नकि नाश होजाते हैं ॥

जैन मत में स्नान न करना, धोवन आदि मैलापानी पीना, थूक और सिनक (नासिका का मल) को कपड़े से मल डालना मुत्र से हाथ तथा गुदादि धोना बर्तनों में पेशाब करना यदि शौच जाना तो बिष्टा कुरेलना और दो चलू से ही मलस्थान की बजाय धोने के लीप देना क्यों कि जलादि को तो ये अपवित्र गिनते ही हैं, इन की शुद्धता भी एक विचित्र ढङ्ग की है, कि जैसी किसी मत में नहीं ।

॥ जैन मत में विवाह करना अनुत्तम ॥

जैनमत में पुत्र पुत्रियों का विवाह करनेवाला महा-घोर नरक को जाता है, क्योंकि इससे संसार की वृद्धि होती है, और संसार की उन्नति करना जैनपोथों से विरुद्ध है । इस कारण बिना विवाह वेश्या और व्यिभ-

चार की मूल जैनी ही मालूमपडते है ॥

(दे० रत्न करंड श्रावकाचार पृष्ट १३०) ॥

॥ जैनग्रन्थानुसार नरक के अधिकारी ॥

जैन मतानुसार कूप, तड़ाग, बावली, नहर आदिकों के बनाने वाले घोर नरक को जाते हैं। (र:क:श्रा: पृ: २५)।

समीक्षक—मुझे अति आश्चर्य है, कि उपरोक्त काम के कर्ता कि जो पुण्य के सर्वथाधिकारी हैं, उनको भी इन्हों ने नरकगामी ठहरा दिया, तो गृह महलों के बनाने वाले कैसे उत्तम हो सक्ते हैं, क्योंकि जिस व्यवहार से कूप तड़ागादि बनते हैं, उन्हीं साधनों से गृहादि बनाये जाते हैं, यदि जैनी इस में पाप ही मानते हैं, तो न जानें इन को क्यों व्यवहार में लाते हैं ॥

जैन मत में पुरुषों के साथ स्त्रीवत् व्यभिचार की विधि

प्रतिष्ठित से प्रतिष्टित जैनी राजा स्त्रीवत् वेष करके नृत्य करते थे, एक अति प्रतापी जैनी जो बालकों के साथ रमण करता था, इस वार्ता को देख उस के पिता ने इस को इन्द्रियतोषार्थं (विषयभोगार्थ) बत्तीस ३२ स्त्रियें नियत कीं, क्योंकि यह कर्म इनके स्वर्ग का कारण है ॥

गाथा—दर का याणं तहण इमं गुडाई यं ॥ पडिगं मुँयमितह विहु, तित्ती जणगंति नायरियं ॥ १ ॥ स्त्री के साथ भोग करने से चौविहार अर्थात् व्रत भंग नहीं हो-

ता, किन्तु बालक और स्त्री के ओष्ट मुँह में लेकर चूमने से भङ्ग होता है, इसी प्रकार से पुत्र प्रथम स्त्रीवत् और द्विविध आहार प्रत्याख्यान में यह भी करे, तो भङ्ग नहीं होता, इस लेख से स्पष्ट ज्ञात होता है, कि प्रथम जैनी स्त्रीवत् बालकों से क्रीड़ा करते होंगे, यवन भी रोज़ों में स्त्री से भोग करने से पाप नहीं मानते हैं ॥

(दे० जैन तत्वादर्श पृष्ठ ३९७—निर्णय सागर बम्बई मुद्रालय सन् १८८४ ईस्वी-और सम्वत्१९४० की छपी में)

॥ जैन मत में न्याय ॥

राजा श्रेणिक जो जैन ग्रन्थानुसार न्याय की मूर्ति था, वह एक दिन अपने रनवास में शयन कर रहा था, अकस्मात् उस को निद्रा उड़ गई, और किसी कारण से रानी चेलना के हाथ पर उसका हाथ पड़ा, तो शीत काल में कपड़े से भिन्न हाथ होने से रानी का हाथ जो शीतमय हो रहा था, उसके स्पर्श से राजा के हृदय में यह बात उत्पन्न हुई, कि यह रानी व्यभिचारिणी है, साथ ही राजा ने रानी के मुख से यह बात भी सुनी, कि उन साधुओं को धन्य है, जो शरत् ऋतु में जङ्गलों में रहते हैं, मेरा हाथ वस्त्र से पृथक् हो जाने के कारण ठण्ढा होगया है, तो श्रेणिक ने पुनः उस रानी को व्यभिचारिणी कैसे जाना, अन्त में वहां से राजा उठ अपने मन्त्री अभयकुमार के निकट आकर आज्ञा दी, कि

तुम तत्काल ही समस्त रानियों के सहित रनवास में अग्नि लगा दो, इत्यादि बातें जैन पुस्तकों में जैनजन बांचते हुए भी उक्त राजा को न्यायमूर्ति ठहराते हैं, यदि वह न्यायवान् होता, तो उक्त रानी तथान्य रानियों को क्यों बिनापराध जलवाता, चेलना रानी पर यदि अपराध सिद्ध हो जाता, तो केवल उसी को दण्ड देता, ऐसे बुद्धिशून्य का न्याय "अन्धेर नगरी गवर्गण्ड राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा" के तुल्य ही होता है।

महानुभावो ! इस उपरोक्त वृत्त को श्रवण कर ही अलम् न समझ लीजिये, किन्तु रणवास को भस्म करने का हुकम देकर राजा निज रानी के पास निश्चयार्थ, महावीर तीर्थङ्कर के समीप गया, कि मेरी रानी व्यभिचारिणी थी अथवा नहीं, यह काम निरक्षरों जैसा है, न्यायशीलों जैसा नहीं ॥

॥ जैन साइंस ॥

किसी जैनी ने हस्त पादों (हाथ पैरों) को काट डाला था, परन्तु निज निज स्थान से पुनः वृक्षशाखा के समान हाथ पैर उत्पन्न हो गये, (दे: जै: क: र: को: भा० १, पृ: १७ बम्बई निर्णय सागर प्रेस की छपी सम्वत् १८५५)।

समीक्षक—रावण और अहिरावण आदिकों को जब जैनी लोग जैनी मानते हैं, तो इन जैनियों से पूर्वोक्त अहिरावणादिकों को ही अधिक प्रतापी, मानना चाहिये,

क्योंकि इनके तो हाथ पैर ही उत्पन्न होते, वा यों कहिये, कि सारा शरीर बनजाता था, परन्तु अहिरावणादि तो एक विन्दु से अनेक अहिरावणादि बन जाते थे लिखे हैं, यदि गप्प लिखे, तो थोड़ी क्यों ॥

जैनमन्दिर द्वार सहित उड़ कर स्वयं चला गया ॥

दे० (जैन कथा रत्न कोश भाग ७ पृष्ट १५५) ।

समीक्षक—मन्दिर जड़ होने से उड़ नहीं सक्ता, पुन: उस मन्दिर के पक्ष (पंख) किसने लगाये थे ॥

किसी जैनी ने आंख निकाल कर चूर्ण कर दी, परन्तु जैनमत के प्रभाव से पुन: नवीन नयन उत्पन्न पूर्व सदृश हो गया। (जैन कथा रत्न कोश भाग ७ पृष्ट ६३)।

समीक्षक—यदि किसी जैनी को निज पुस्तकों की सत्यासत्य परीक्षा करनी हो, तो निज नयनों से कर सक्ता है ॥

माणिक रत्नादिकों से चेतन अर्थात् स्त्री पुरुष उत्पन्न हो जाते थे। (जैन कथा रत्न कोश भाग ७ पृष्ट १५५)।

समीक्षक—रत्नादिकों से मनुष्य निकल पड़ने ही को नवीन जैन साइंस समझो ॥

हस्ती और हस्तिनी की आंखों में सुरमा डालने से मनुष्य तथा चींटी और तोतादि बन जाते थे, इसी प्रकार मनुष्यों के हस्ती बन जाते थे।जै:क:र:क: पृ: १६०

एक हाथी को किसी एक जैनी ने घूमा से मार डाला। (जै० क० र० को० भा० ७, पृ० १८१)।

समीक्षक—मनुष्य के घूँसे से हाथी का मरना असम्भव है छोटे २ जीव न मरें, इस लिये तो मुंह बांधते हैं, और हाथी जैसे बड़े जीव के मारने में मानो कुछ पातक ही नहीं ॥

प्रज्वलित अग्नि कुण्ड से मनुष्य निकल पड़ा।

(जै० क० र० को० भा० ७ पृ० २४२)

समीक्षक—प्रज्वलित अग्नि से यदि मनुष्योत्पत्ति जैनग्रन्थों से सिद्ध है तो जोड़े का उत्पन्न होना, तथा मरना, एवं ४९ ॥ दिन की पालनादि क्रियायें ये सब उड़ गईं, क्योंकि प्रज्वलिताग्नि कुण्ड से पले पलाये मनुष्य उत्पन्न होने लिखे हैं ॥

जैन मर कर भी बातें करते थे। (र० को० पृ० २४३)

समीक्षक—जिस प्रकार जड़ रूप बांसुरी होने पर भी छिद्रों के द्वारा बोलती है, तदनुसार जैनमृतकों से वार्तालापादि होने के लिये किसी प्रकार का उद्यम किया जाता होगा ॥

महावीर ने उत्पन्न होते ही मेरु पर्वत को अङ्गुष्ट से दबाया, तो समुद्र उछलने लगा, पृथिवी नाचने लगी, पहाड़ गिरने लगे, (जै: योग शास्त्र, हेम चन्द्राचार्य कृत, पृ: ४)

समीक्षक—जब महावीर के शरीर से एक अङ्गुष्ट मात्र के द्वारा मेरु को दबाने से समुद्र उछलने आदि लगे, तो जिस समय महावीर उत्पन्न होकर पृथिवी में स्थित हुए होंगे, उस समय न जानें उस भार से दबी हुई

पृथिव्यादि वस्तुओं की क्या दशा हुई होगी, और जब ये दौड़ते होंगे उस समय के वृत्त की वार्ता का करना मानो सारे ब्रह्माण्ड का हल चल करना है ॥

महावीर के शरीर में रुधिर के स्थान में दुग्ध निकला।

समीक्षक—यह बात भी सृष्टिक्रम वा न्याय से विरुद्ध है, यदि इस के शरीर में रुधिर नहीं था, तो मांसादि से युक्त शरीर कैसे बनकर उन्नत हुआ ॥

प्रथम आरे (काल) में गङ्गा और सिन्धु की चौड़ाई ६२०००० (छः लाख बीस हजार) मील थी तथा उस नदी के तट पर काशी और हस्तिनापुरादि नगर भी थे, और भरत खण्ड को हिमालय के दक्षिण में तिखुटा अर्थात् तीन कोनों वाला समुद्र से घिरा हुआ भी माना है, और विजयार्द्ध अर्थात् विन्ध्याचल बीच में पड़ा हुआ है, जिस से भरत खण्ड के दो भाग हो गये हैं, सो यह सारे अद्यावधि विद्यमान हैं, और सिन्धु को पश्चिम समुद्र में गिरना और गङ्गा को पूर्व समुद्र में गिरना माना है, जितने तीर्थङ्कर हुए हैं, सो सब गङ्गा और सिन्धु के मध्य में ही हुए, परन्तु गङ्गा की इतनी चौड़ाई और सिन्धु का इतना पाट मान कर शेष समस्त भूगोल में से क्या बचा, जिस पर कि नगर वा बन थे, प्रथम आदिनाथ अयोध्या से चल कर छः मास में हस्तिनापुर गङ्गा को उतर कर आया, वह पृथिवी जिस पर कि आदिनाथ छः मास चला था, कहां गई, और छः लाख बीस हजार

मील वाली गङ्गा से किस प्रकार पार हुआ, सिन्धु और गङ्गाका अन्तर न्यूनसे न्यून पचीस करोड़ (२५००००००) मील होना चाहिये, क्योंकि जब छः २ सात २ लाख मील की पाट वाली नदियां हैं, तो उनके बीच में बसने के लिये नगरादि देश के देश की आवश्यकता है, पुनः सिन्धु और गङ्गा घटते २ चार अङ्गुल चौड़ी रह जावेंगी, अर्थात् गाड़ी के चक्र (पहिये) की रेखा के सदृश ।

(देखो प्रकरण सङ्ग्रह पृष्ट १४४)

समीक्षक—इस उपरोक्त लेख के प्रमाण पूछने पर जैनी जन कदाचित् यही उत्तर देंगे, कि वर्तमान समय (सन् १९०३ ई०वा सम्वत् विक्रमीय १९५९) के लिये यह बात नहीं नियत की गई है, कि सिन्धु गङ्गादि की धारें ४ अङ्गुल की हो रह जावेंगी, किन्तु इसका वृत्त तो सृष्टि के अन्त में देखना चाहिये, कि लेख सत्य है या असत्य॥

क्या पृथिवी एक रबड़ का गोल विस्तर है। जो इस को कदाचित् जैन तीर्थङ्कर ही खींच कर बड़ा कर लेते होंगे, क्योंकि रबड़ भी बिना दूसरे के खींचे नहीं बढ़ती, भला ऐसी २ बातों के सत्य मानने वाले भी अपने आप को मनुष्य ठहराते होंगे॥

सूर्य चन्द्रमा महावीर जैनी के यहां मुजरा करने को आते थे, और सूर्य में तेज नहीं है, किन्तु उसके बैठने की सवारी रत्नों से जड़ी हुई है, इस लिये प्रकाशमान है, और चन्द्रमा भी स्वतः रत्नों के द्वारा जो सूर्यवत् रथ

में लगे हैं प्रकाशित है और श्वेताम्बरी रथ सहित माना मानते हैं ।

समीक्षक—अब मैं जैनियों से पूछता हूँ, कि यदि सूर्य में उष्णता नहीं है, किन्तु रत्नों की गर्मी है, तो बिचारे जौहरियों को अति कठिनता बीतती होगी, क्योंकि उनके घर में रत्न अधिक रहते हैं रत्नों की उष्णता उनको क्यों नहीं व्यापती, क्योंकि उष्णकाल में उस सूर्य की सवारी के उतनी दूर के रत्न बेचैन कर देते है, तो इन्हें अति निकट के रत्न क्यों चैन लेने देते होंगे, क्यों जैन तीर्थङ्कर जी ! रत्न तो पत्रों (कागज़ों) की पुड़ियों में बंधे पड़े रहते हैं तो वह पत्र क्यों नहीं उष्णता से भस्म हो जाता, मुझे तो इतने ही में सन्तोष हो जाता, कि रत्नों की पुड़िया का कागज़ ही किञ्चित् उष्ण होजाता, परन्तु क्या हो, जब जैनियों ने असत्य बोलने आदि व्यवहारों का ही पक्ष पकड़ लिया, तो झूठ की वृद्धि में अब क्यों कृपणता करें ॥

मेरु पर्वत जम्बू द्वीप के मध्य में एक लक्ष योजन है, और जैनी चार हज़ार क्रोश का एक योजन मानते हैं, इसका पूर्ण वृत्त (तफ़सील) इस प्रकार से लिखते हैं, कि प्रथम २५० योजन पृथिवी, पुनः २५० योजन पाषाण, फिर २५० योजन सार लोह और २५० योजन हीरे यह सब पृथिवी में हैं । अब ऊपर का वृत्त सुनिये कि (१५॥।) पौने सोलह सहस्र योजन काला जवाहिरात,(१५॥।)हज़ार

योजन स्वेत रत्न, (१५॥।)हजार योजन स्वर्ण, पौने सोलह हज़ार योजन चांदी, और बत्तीस हज़ार योजन केवल (खालिस) रक्त वर्ण स्वर्ण है। दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा तेली के बैल के सदृश रात्रि दिन मेरुके चारों ओर भ्रमण करते रहते हैं, परन्तु जैनाचार्यों में इतनी भी बुद्धि नहीं हुई, कि हम रत्नजड़ित सूर्य चन्द्रादि के बिवान को स्वतः प्रकाश मानते हैं, और मेरु को समस्त रत्नों का ढेर मानकर भी अन्धेरी रात्रि होने पर विद्वज्जन हमें महा-मूढ़ जानेंगे इत्यादि और लोहे के ऊपर वह हीरे का पर्वत, तथा समस्त (काला वा स्वेत) जवाहर तथा स्वर्ण और चांदी आदि को किसने किस प्रकार बनाया, क्योंकि चांदी सोने के परमाणु पृथिवी द्वारा मिले हुए होते हैं, और हीरा तथा जवाहर बड़े २ पहाड़ नहीं हो सक्ते, इतने पर भी यदि बुद्धिमान पढ़े लिखे हठवश से जैनमत को न छोड़ें, तो उनको सिवाय पाजियों(ज़िद्दियों) के और क्या कहा जावे॥

महाबीर आदि तीर्थङ्कर पृथिवी से सदा चार अङ्गुल ऊंचे अर्थात् अधर रहते लिखेहैं, सो न जाने वे किस वस्तु के आधार पर रहते थे, और चार अङ्गुल का ही नियम क्यों नियत किया गया, क्योंकि जो विशेष विषयी था, वही विशेष ऊंचे पद का भागी होता था तो पुनःप्रतिष्ठा-नुकूल न्यूनाधिक अंङ्गुलों का भी प्रमाण क्यों न हुआ। पुनः यदि कोई अब यह कहे, कि उनके शरीर ही ऐसे

अभार रूप थे, कि जैसे पतङ्ग वायु द्वारा अधर रहता है, तो भ्राताओ! जिस ओर को अधिक वायु होती है, पतङ्ग भी उसी ओर को उड़ती चली जाती है, और कभी२ वृक्षों में उलझ जाने से उसका शरीर भङ्ग हो जाता है, और किसी समय में अल्प वायु होने पर किसी दूसरे की डोर से डोर कट जाने पर पृथिवी में गिर जाता है, तो क्या तीर्थङ्करों की भी पतङ्ग के तुल्य दुर्दशा रहती थी और पतङ्ग तो चौकोर होने से झोका कम खाती है, परन्तु महावीर आदि तीर्थङ्कर सात हाथ से २००० हाथ लम्बे क्योंकर रह सके होंगे, क्योंकि उनका निराधार तो क्या किन्तु लाठी के सहारे से भी रहना कठिन है॥

तीर्थङ्कर खाते तो थे, परन्तु मल नहीं त्यागते थे, ऐसा जैनी जन मानते हैं, और केवल ज्ञान उत्पन्न होने पर तो बिचारों का अन्न भी छूट जाता था, अर्थात् जैनियों का केवलज्ञानी वह है, कि जिसका खाना भी बन्द, और पाखाना भी बन्द॥

भला जिस वस्तु का तीर्थङ्कर भोजन करते थे, तो उस खाये हुए पदार्थ के सर्वांश को किस प्रकार से कोई खा-जाता था, अथवा क्या पेट के द्वारा सुरङ्गवत् कहीं दूसरे स्थान में एकत्रित कर दिया जाता था, कि जो केवल ज्ञान होने के पश्चात् जब भोजन न मिलता हो, तो उस समय उस एकत्रित पदार्थ से सहायता ली जाती हो, या क्या

यदि ऐसा नहीं तो बिना भोजन के जीवन किस प्रकार रह सक्ता है॥

तीर्थङ्करों के ओष्ट और ताल्वादि स्थानों मे बिना जिह्वादि सङ्केतों के सर्वाक्षर (प्रत्येक शब्द) निकलते थे, कि जो अति मधुर और सुरीले श्रेष्ट ध्वनि युक्त थे, सो क्या इनका शरीर कोई चाबीदार, या फनरदार वाद्य था, जो कि वह प्रतिसमय सबको सुष्ठु २ शब्द सुनाया करता था॥

तीर्थङ्करों के केश और नख नहीं बढ़ते थे, सो क्या कोई इनके रक्त विकार था, यदि था, तो क्या रक्त का गमनागमन (दौरा) इनके बन्द था, यदि बन्द था, तो इनका सहस्रों वा लाखों वर्ष जीवन किस प्रकार माना जावे, क्योंकि बिना रुधिर के मनुष्य जीवित नहीं रह-सक्ता, यदि कोई ऐसा कहे, कि जिस प्रकार प्राणायाम या समाधि काल में महात्मा रहते हैं, इसी प्रकार से ये भी रहते होंगे, सो ऐसा कहना भी नहीं बनसक्ता, क्योंकि प्राणों के रोकने आदि के लिये भी शरीर को नीरोगता चाहिये, जब शरीर अरुज होगा, उसी अवस्था में नेत्रादि बन्द कर स्वस्थचित्त हो, समाधि आदि कर, रह सक्ता है, और समाधि में नेत्र बन्द आदि साधनों की आवश्यक्ता है, सो जैन तीर्थङ्करों के नेत्र का पलक जैन ग्रन्थानुसार दूसरे पलक से लगता ही न था, सो यह भी कहना उनका नहीं बनता । दूसरे प्राणों के निरोध में शरीर जड़वत् हो जाता है, तीर्थंङ्कर तो स्थान २ फिरते रहे हैं, क्योंकि

जैन ग्रन्थों में लिखा है, कि जब तीर्थङ्कर चलते थे, तो देवता पग २ पर पच्चीस २ कमल के फूल रखते थे, ऐसा करना भी देवताओं की अज्ञानता का कारण था, क्योंकि तीर्थङ्कर तो फूलों से भी चार अंङ्गुल ऊंचे हो जाते थे। तीसरे समाधि अवस्था में श्वास का भी शब्द नहीं रहता, परन्तु तीर्थङ्करों के मस्तक के अन्तर भाग (मग़ज़) से अति-वृहत् नाद निकलता रहता था, ऐसा लिखा है॥

एक जलविन्दु में अनन्त जीव हैं, अर्थात् यदि एक बिन्दु के जीव राई के दाने तुल्य शरीर धारण करें, तो दश अरब मील चौड़े और दश अरब मील लम्बे स्थान में भी नहीं समा सकें।

समीक्षक—प्रथम तो जब एक विन्दु ही अनन्त नहीं तो उस में जीव अनन्त क्योंकर हो सके हैं, दूसरे एक विन्दु के इतने परमाणु भी नहीं हो सकें, यदि किसी को गप्पनिधि देखना हो तो जैन पुस्तकों को देख लेवे॥

जैनी अग्नि में भी जीव मानते हैं, सो यह प्रत्यक्ष असम्भव है, क्योंकि अग्नि में जीव हो ही नहीं सक्ता, अग्नि तो घृत जैसे स्निग्ध पदार्थों के परमाणुओं को पृथक् २ कर देता है, तो पुनः शरीरादि के परमाणु जो कि रूक्ष हैं, अग्नि में कैसे स्थित रह सके हैं॥

जैनी चन्द्रमा को सूर्य से वृहत् आकार वाला और ऊंचा मानते हैं, इन्हों ने सूर्य को लघु आकार वाला माना है, और इन के विमानों को कई सहस्र देवता

खींचते थे लिखे हैं, सो प्रथम तो चन्द्रग्रहण विशेष होते हैं, यदि चन्द्रमा वृहत् होता, तो चन्द्रग्रहण विशेष कदापि न होते, दूसरे इस बात में समस्त संसार के बड़े बड़े साइंस के जानने वाले एकमत हैं, कि चन्द्रमा छोटा और सूर्य बड़ा है, तथा च सूर्य ऊपर और चन्द्रमा परतः प्रकाशमान है। तीसरे यदि इन के विमानों को देवता घसीटते हैं, तो देवता अतीव पापभागी हैं, कि जो डाक के घोड़ों से भी अधिक काम करते, और एक क्षण मात्र भी आराम नहीं भोग सके, और सूर्य चन्द्र भी अत्यन्त अपराधी हैं, कि जो चक्कर काटते ही रहते हैं. महाशयो ! जैनाचार्यों को इतना भी नहीं सूझा, कि वायुमान (विमान) का नाम तो वायु के आधार चलने वाली यान (सवारी) का है, इसमें बैलों के स्थान में देवताओं को क्यों कष्ट दिया, वा देते हैं, पुनः वे देवता किस वस्तु के आधार पर चलते हैं. यान को तो केवल इस कारण बनाया है, कि जो सवारी करे, वह निज इच्छानुकूल अधिक चले ॥

जैन ग्रन्थों में लिखा है, कि एक चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उतने समय में देवता जम्बू द्वीप की तीन परिक्रमा कर आते हैं, सूर्य और चन्द्र ये दो दो हैं, और जम्बु द्वीप के चारों ओर घूमते हैं, इन में एक २ का नम्बर चालीस २ घण्टे बाद आता है, और चुटकी एक सिकण्ड में एक बजती है, और वे एक

सिकण्ड में तीन बार घूम सक्ते हैं, तो मानो अपनी रफ़्-तार की अपेक्षा सवारी में चार लाख बत्तीस हज़ार चक्कर कम लगाये, यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है, कि जैसे कोई पुरुष जो आराम से २५ मील पैदल चल सक्ता है, उसको ऐसी सवारी में बैठा दे, कि वह सारे दिन में एक इञ्च से विशेष न जा सके, तो क्या उस को ऐसी सवारी में बैठना उचित है ? और उसे आराम ही क्या मिल सक्ता है, या इसी का नाम सवारी है ॥

मनुष्यों की उत्पत्ति, मूत्र, विष्टा, थूक, सिनक, रुधिर, स्वेद, मांस, आंख के मल, आदि जो २ वस्तु शरीर से निकलती हैं, उन उपरोक्तादि सबों में से बड़ी २ डाढी मुच्छों के मनुष्य निकल २ कर भागने लगते हैं, इनको इकसैणिये और क्रमोक्रम कहते हैं, यह फिलासफी जैन तीर्थङ्करों की है, कि जिसको जैनमतानुरागी जन ही सत्य मानते होंगे, क्योंकि यह उपरोक्त बातें मद्यपियों जैसी निर्बुद्धिपन को विख्यात करती हैं, जिस प्रकार कोई पागल मनुष्य सन्निपात (त्रिदोष) की दशा में बक-ता है, तदनुसार ही इन्हों ने भी वही वृत्त किया है, क्योंकि अब यहां पर जैनी जन अपनी २ माताओं के दुग्ध पीने मात्र से अनन्तानन्त जीव भक्षण कर जाते होंगे, क्योंकि जब शरीर से निकले हुए अन्यपदार्थों से डाढ़ी मूछ के मनुष्य निकलते थे, तो क्या दुग्ध शरीर से नहीं बनता । और जैन साधु दन्त धावन (दातून) भी तो

नहीं करते, इस लिये दन्त से उत्पन्न हुए मल से भी मनुष्य निकलते रहते होंगे, कि जिनको वह प्रत्येक समय भक्षण करते रहते होंगे, क्योंकि मुंह पर पट्टी बांधने से थूक के परमाणु जो वाष्प (भाफ) द्वारा निकलते रहते हैं, वे पट्टी में प्रवेश करके पुन: पट्टी में से मनुष्य निकल २ उलटे उनके मुँह में जाते होंगे, यह शिक्षा मांस के प्रचार करने की है, अर्थात् कोई पुरुष बिना मांसभक्षण किये नहीं रह सक्ता, तो पुन: अहिंसा धर्म जैन मत से किस प्रकार सिद्ध हो सक्ता है॥

प्रथम तो जैन जन यह कह चुके हैं,कि(४८) उनचास दिन में जोड़ा पल कर युवावस्था को प्राप्त होता, अब थूक आदि में ही डाढ़ी मुच्छ वाले नव युवा जैन निकलने लगे, इत्यादि बातों को पढ़ कर अब जैन जन भी अवश्य मन में समझ गये होंगे, कि हमारे तीर्थङ्कर बड़े गप्पी और मिथ्यावादी हो गये हैं, कि जो असम्भव बातों के ही घोड़े उड़ाये हैं, यही कारण है कि जैन जन अपने असत्य से भरे पुस्तकों को किसी को दिखाते भी नहीं, क्योंकि जैनी यह जानते हैं, कि इन पुस्तकों को देख कर लोग सारी कलई खोल देंगे । प्राय: जैनी अपनी पुस्तकें छिप २ कर लिखते वा लिखवाते हैं, छपवाने का उद्यम नहीं करते हैं, यदि पुस्तक सत्य हैं तो सब के समक्ष क्यों नहीं धरते । और यदि छपवाते हैं तो पहली पुस्तकें जिन में सरासर असंभव बातें हैं उनको छोड़ कर

समीचक—क्यों नहीं जब असत्य हो, तो क्या इतने से भी कम हो, ऐसी ही ऐसी बातों से ज्ञात होता है, कि असत्य और असम्भव बातों का ठेका जैनियों ही के भाग में आया है॥

महावीर के समय में सारी सृष्टि बसती थी, चीन, यूनान, जापान, ब्रह्मा, सीलोन, रूस रूम और खासकर जैनमत के विरोधी ब्राह्मणादि, परन्तु पूर्व धारियों का उत्पन्न होना जैनियों के ही यहां पाया जाता था, औरों के यहां वे भी उत्पन्न नहीं हुए॥

जैनी आत्माराम अपनी पोथी जैन तत्वादर्श में लिखते हैं कि जैनी हेमचन्द्राचार्य ने (जोकि शहाबुद्दीन गोरी के समय उत्पन्न हुआ है, उसने)तीन करोड़ पचास लाख ग्रन्थ रचे, सो इस बात को भी बुद्धिमान् जन विचार कर लेंगे, कि यह कहांतक सत्य है क्योंकि साढ़े तीन करोड़ ग्रन्थ पचास वर्ष के अनुमान में किस प्रकार बनाये, इतने श्लोक भी कोई किसी प्रकार नहीं बना सक्ता, क्योंकि प्रति दिन में (२०००) दो हजार श्लोक नवीन बनाने का हिसाब बैठता है सो यदि श्लोक ही माने जायें तो भी यदि ५० वर्ष लगातार बनाता ही चला जावे, नागा एक दिन का भी न करे, तब बन सक्ते हैं। ऐसे प्रत्यक्ष झूठों के धर्मग्रन्थ किस प्रकार प्रमाणिक हो सक्ते हैं?

विक्रम के समय में महादेव के लिङ्गमें से पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर की प्रतिमा निकल पड़ी, भला पत्थर के लिङ्गमें

से प्रतिमा क्योंकर निकल सक्ती है, हां ! यह तो होसक्ता है कि राजा विक्रम के बाद अविद्यामय देश था, उस समय से जिन (जैनियों) की उत्पत्ति हुई हो, इसी हेतु से जैन पुस्तक अविद्यामय देख पड़ते हैं। और इस को दिगम्बर और स्वेतांम्बर दोनों मानते हैं॥

आत्माराम जैनी लिखते हैं कि जब पार्श्वनाथ उत्पन्न हुए जिसको (२६५०)दो हज़ार छःसौ पचास वर्ष के अनुमान हुए उस समय सारी सृष्टि के देवता प्रथम सिक्कों को ला ला कर पार्श्वनाथ के घर में दबा गये, इसी लिये प्राचीन काल के सिक्के नहीं मिलते।
(देखो अज्ञान तिमिर पुस्तक दूसरा ख० पृ० ३४)।

समीक्षक—सत्य और ज्ञानप्रद शिक्षायें, जैन मत में तभी तो नहीं मिलतीं, क्योंकि ज्ञान को तो इन्हों ने अपवित्र माना है इस हेतु से ये ज्ञान के स्पर्श होने से भी डरते हैं॥

मनुष्यों के दन्त और डाढ़ों को एक जैन चक्रवर्त खा गया, तो यह अस्थि भक्षी (हाड़ों के चबाने वाला) भला मांस को कब छोड़ता होगा, जिनको कि आत्माराम जैन तत्वादर्श पृ० ५३४ में लिखते हैं, कि खीर बन गई, यदि खीर बनी भी मानें, तब भी अस्थि भाव तो कहीं नहीं जा सक्ता। वाममार्गी वा अघोरी जन भी मृतक मनुष्य को करामात से पदार्थ बनना बतलाते हैं। इसी

महावीर के लिये एक ऐसा अद्भुत आश्चर्यप्रद (अजायब) घर बना बताते हैं, कि जो पृथिवी से छ:मील ऊंचा था, पुन: उस उचान के ऊपर चबूतरे बनाये गये थे, और वह १२० मील लम्बा और उससे कुछ न्यून चौड़ा था और मिट्टी तथा चूना के स्थान में जवाहरात की भस्म से चिना गया था, उसमें बीस हज़ार सीढ़ी थीं परन्तु आश्चर्य यह है कि बालक और गर्भवती स्त्रियां तथा वृद्ध जन एक घण्टे में हो२ कर अपने २ घर आजाते थे यह बात सिद्ध होचुकी है कि छः मील के ऊपर वायु नहीं है अतः वहां कोई जाकर किस प्रकार जीवित रहसक्ता है और इतने ऊंचे स्थान को कैसे शीघ्र चढ़ उतर सक्ते थे, पुनः सब से बढ़कर नई बात यह है कि एक २ हाथ ऊंची सीढ़ी वाले ज़ीने पर कोई भी मनुष्य एक मील ऊपर कदापि नहीं चढ़ सक्ता, तो छः मील कौन चढ़ेगा इसपर भी यह एक कैसी अद्भुत बात है कि राजा अशोक के समय के छोटे २ स्तूप दिल्ली प्रयाग गिरनार पेशावर आदि में हैं सो यह सम्पूर्ण नगर अद्यावधि विद्यमान हैं, तो भला क्या उन २ ही गृह को दीमक चाट गई। इन गृहों के वृत्तान्तों को किसी ने कुछ भी नहीं लिखा कि जिन घरों में सूर्य और चन्द्रमा आते थे, यदि यह सत्य तो सारे संसार के विद्वान् वा ब्राह्मणादि इस विषय में अवश्य कुछ न कुछ लिखते ॥

रावण ने पृथिवी में घुस कर कैलाश पहाड़ को जड़ से उखाड़ डाला, और उसे ऊञ्चा उठा २ कर फिराने लगा, जब सम्पूर्ण पहाड़ गिरने लगे, तब बालि ने कि जो उसी पहाड़ पर था अपने पैर के बांए अंगूठे को दबा दिया कि जिससे रावण दब गया। बालि पहाड़ पर तप करता था, उसके समेत जब कि रावण ने पहाड़ को उठा लिया था, अंगूठे मात्र के दबाने से रावण कैसे दब सक्ता है, क्योंकि अंगूठा दबाने के प्रथम भी तो अपने सारे शरीर के भार समेत उसी पहाड़ पर स्थित था। और रावण पृथिवी में कैसे घुसा था, जो कहो कि चीर कर, सो यह भी असम्भव है। पुन: पहाड़ कि जिस की जड़ पृथिवी है, उस का उठाना क्या सहज ही है॥

सीता को बलात्कार से भड़कती हुई अग्नि में डाल दिया, तो वह अग्नि जलरूप होकर सम्पूर्ण नगर को डुबोने लगी, और सीता एक कमल के फूल पर जा बैठी, यह कथा जैन पद्म पुराणादिकों में लिखी है।

समीक्षक—भला अग्नि अपनी प्रकृति को कैसे त्याग सक्ता है, कि जो जल हो जाता, पुन: जल की भी इतनी वृद्धि हुई कि सारा नगर ही डूब जाता, और उस समय ऐसी शीघ्रता से कमल भी उत्पन्न होगया, कमल में कीटादि तो स्थित हो सक्ता है, पुरुष स्त्री नहीं॥

अयोध्या में रामचन्द्र जी की निम्नलेखानुसार सेना थी, जैसे कि बयालीस लाख हाथी, नव करोड़ घोड़े

बयालीस करोड़ सिपाही, पचास लाख बैल, और एक करोड़ गायथीं और प्रजा पृथकथी।। (पद्मपुराण पृ० ९९९)

और साथही जैन ग्रन्थो मे यह भी लिखा है कि रामचन्द्र से विमुख मथुरा वा बङ्गालेमें भी राजा थे, कि जो रामचन्द्रसे किञ्चित भी न्यून नथे,मथुराका मधु राजा अति प्रतापी था,उस समय में वर्तमान कालसे वीस (२०) गुणा अधिक उन्नत पुरुष जैनी बतलाते हैं, अब बिचार करने की बात है, कि ४२ करोड़ सिपाहियों के होने से उन को उतनी ही स्त्रियां तथा बाल बच्चे होने से एक अर्ब से अधिक हुए, तथा प्रजा आदि सब मिल कर पद्मों की सङ्ख्या होगी, भला कोई बुद्धिमान इन की ऐसी असम्भव बातें मान सक्ता है ? कदापि नहीं ।।

जैनी जन द्वारिका ४० क्रोश में वसती बतलाते हैं, और उसमें एक अर्बबत्तीस करोड़ घरथे,उस समय मनुष्य अब से दश गुणा विशेष उन्नत थे, और गाय, भैंस घोड़े हाथी, बाग, बगीचे आदि पृथक् रहे, उस समय मे अब मनुष्य अङ्गों में क्या सब के सब दशांस रह गये, किसी न किसी को तो पूर्ववत् रहना था, अथवा आधे ही अंश में रहते ।।

पद्मावती देवी के बत्तीस ३२ भुजा बताते हैं, और उस के शिर पर पार्श्वनाथ की मूर्ति रहती हैं, तो वह पार्श्वनाथ के समय में उत्पन्न हुई थी, इस से आभ्यन्तरिक आशय यह है, कि वह देवी कि जिस पर पार्श्वनाथ

प्रति समय सवार रहते थे, वह कामकला में सोलह आने भर थी, क्योंकि उसके ३२ भुजा थे ॥

मेंढक भी महावीर की पूजा करते थे, (र० क० अ०)

समीक्षक—क्यों न पूजते, क्योंकि उन्हें जल सञ्चयार्थ कूप तड़ागादि अधिक बनने बनवाने की आज्ञा इन से लेनी थी, क्योंकि ये जलोत्पादकादि कार्यों के बाधक थे, परन्तु उन विचारों की पूजा निष्फल गई, क्योंकि ये पाषाण हृदय दयादि भावों की ओर नहीं पिघलते ॥

गङ्गा नदी मगरमच्छ के मुख से निकली है, उस मगर जन्तु की जिह्वा पांच हज़ार (५०००) मील चौड़ी, और साठ हज़ार (६००००) मील लम्बी है और गङ्गा जहां से निकली है, वहां से समुद्र में गिरने पर्यन्त उस में १४ हज़ार नदी मिली हैं। भला जिस मगर वा मत्स्य की इतनी बृहत् जिह्वा थी, तो उस का शरीर पद्मों मील का होगा, क्योंकि गङ्गा तो मानों उस के मुंह की राल थी, परन्तु उस का आहार कितना और क्या होगा ॥

जैन पद्म पुराण में लिखा है, कि हनूमान जब उत्पन्न हुआ, तो उस के दो चार दिन पश्चात् उस को उस का नाना विमान के द्वारा लिये जाता था, हनूमान अपनी माता की गोद से उछल कर पहाड़ पर गिर पड़ा, तो उस पहाड़ का चूरा २ होगया, परन्तु हनूमान के शरीर में चोट का किञ्चित् भी चिन्ह नहीं हुआ।

समीक्षक—धन्य हो, जो चाहो सो लिखो, लेखनी

तुम्हारे हाथ में थी, और अब भी है ॥

बीस(२०)हाथियों के दांतों पर करोड़ों मील मुरब्बा जैन मन्दिर बने हुए हैं, और वह अनादि हैं। र:क: भा:

समीक्षक—भला इन दांतों को कोई कभी स्वीकार कर सक्ता है ? अर्थात् कभी नहीं, क्योंकि जिन हाथियों के दांतों पर कोटियों मील मुरब्बा के जैन मन्दिर बने हैं, तो वे हाथी कितने २ बड़े वा लम्बे चौड़े होंगे। जब कि हाथी प्रथम विद्यमान थे कि जिन पर मन्दिर बने, तो मन्दिर कैसे अनादि होगये, हां अलबत्ता इन मन्दिरों से वे हाथी ही अनादि (प्रथम उत्पन्न हुए) ठहरेंगे ॥

केवल ज्ञान होने पर तीर्थङ्करों के चार मुंह हो जाते हैं, सो यह क्योंकर हो सक्ता है, तीन मुख शरीर के कौन भाग से फूट कर निकले, और यदि कोई कहे, कि चार मुख होते नहीं, परन्तु समोसर्ण के द्वारा दीखते हैं, तो समोसर्ण से तो सब के ही चार मुख दीखने चाहियें, वा दीखते होंगे ॥

जैनियों की प्रकरणसङ्ग्रह पुस्तक पृष्ट ११८ में हज़ार २ योजन के रत्न लिखे हैं।

समीक्षक—इन रत्नों को कौन पुरुष काम में लाता था ॥

एक जैनी पांच सौ अशर्फियां नित्य प्रति उगलता था, और पांच सौ ही अशर्फियां नित्य उसकी गुदड़ी में से झड़ती थीं ॥ (रत्न कोश प्रथम भाग सिन्दूर प्रकरण)॥

समीचक—उस अशर्फी उगलने वाले जैनी का, ज्ञात होता है, कि अब वंश नाश होगया, क्योंकि यदि उस के परिवार में अब कोई उस के वीर्य वाला होता, तो अब भी अशर्फियां उगलता, यदि उतनी नहीं, तो चतुर्थांश वा दशांश ही सही या उतसपर्ण अवसर्पणिक क्रम से है सही ॥

एक जैनी स्नान कर रहा था, तो उस समय उस के सम्मुख से पानी के पात्र वा पटड़ा (स्नानकरने की चौकी) यह आकाश मार्ग में उड़ गये, जब वह रोटी खाने लगा, तो गृह से उस के सम्मुख जो थाली, लोटा, तथा बत्तीस (३२)कटोरियां यह सब उड़गई, यद्यपि उस जैनी ने निज बाहु से उन उड़ती हुई वस्तुओं के पकड़ने का अत्यन्त उद्यम किया, तथापि वे सब वस्तुएं उड़ ही गई, और इस का परिश्रम व्यर्थ ही गया (रत्नकोश भा० १, पृष्ठ २६०)

समीचक—यदि जैनियों ने इस उपरोक्त भयसे स्नान त्याग किया हो, तो भोजन भी त्याग देना योग्य है ॥

एक समय जैनीराजा को महावीर के समयमें बहता हुआ सन्दूक मिला, कि जिस में बड़े २ ताले जड़े थे, वह केवल इतने कहने मात्र से खुल गये, कि यदि जैन-मत सत्य है, तो खुल जाओ, (रत्न कोश भा० ५ पृष्ठ ११)

समीचक—उस समय वा इस समय जैनियों को तालों के लिये तालियों की आवश्यकता न थी, और न अब है, क्योंकि यदि जैन मत सत्य है, तो इतने कहने ही से ताले

खुल जांयगे, यह बात जैनमत की परीक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी है, परन्तु यह नहीं लिखा, कि जैनी ही इस को कहे तभी ताले खुल जांयगे, या चोर आदि कह कर अपना काम निकाल सक्ता है ॥

सिद्ध सेन जैनी मुनि आचार्य ने एक राजा को जब कि वह एक अपने शत्रु से लड़ता था, उस के सहायार्थ एक २ राई के दाने से पैंतालीस २ शस्त्र सहित घोड़ों पर चढ़े हुए सिपाही बनादिये, और बहुत पलटन वा फौज तय्यार कर दी, परन्तु उस राजा से यह ठहरा रक्खा था, कि पश्चात् में तुम्हें जैनमत स्वीकार करना होगा, तदनुकूल उस राजा को जैनी बनाया (तत्वादर्श पृष्ठ ५६२) यह विक्रमादित्य के पीछे का हाल है ।

समीक्षक—भला यह तो हो सक्ता है, कि विपत्ति काल में सहायता करने से राजा कदाचित् जैनी होगया हो, परन्तु यह दोनों बातें तो तभी प्रमाण में आने के योग्य हैं, कि जैनी यह बात सिद्ध कर देवें, कि इस प्रकार से राई के दानों से फौजें तय्यार करदीं, यह भी लोगों को निज महत्व दर्शाने के लिये झूठी गप्प मारी है ॥

जैन तत्वादर्श में जैनी आत्माराम जी लिखते हैं, कि पृथीराज के पुत्र जांजन ने एक सौ बीस (१२०) मील ऊंची ध्वजा स्वर्ण की जैन मन्दिर में चढ़ाई, कि जिस में दूसरा जोड़ न था ।

समीक्षक—अब बुद्धिमान इस बात को सोचें, कि

पृथीराज को अधिक समय नहीं हुआ है, वह इतनी बृहत् और विशेष मूल्य की ध्वजा अब कहां गई, इन ऐसे २ लेखों से ही जैनशास्त्रों की असत्यता साक्षात् टपकती है, अतः मैं जैनी भाइयों से विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूं, कि हठ धर्म त्याग कर जैनमत के शास्त्रों और वैदिकधर्म का साक्षात्कार (मुक़ाबला) करके सत्यासत्य की विवेचना करो॥

एक जैन स्त्री ने अपने छोटे २ बालकों को जो बोलना तक भी नहीं सीखे थे, एक समय उन रोते हुओं को संस्कृत में उपदेश कर के वैरागवान् बनाया, और इसी प्रकार से अपने सात पुत्रों को छः २ सात २ महीने की आयु में वैरागी कर दिया।

समीक्षक—प्रथम तो संस्कृत बिना पढ़े वह बालक क्योंकर समझे, दूसरे वह स्त्री स्वयं विषय करा २ कर बालक उत्पन्न करती रही, अपने आप को जब विषय-कामनाओं से वैराग उत्पन्न नहीं हुआ, तो निज छोटे २ अबोध बालकों को कैसे वैरागी बनाया॥

घोड़े, हाथी, सिंह, ऊंट, सर्प, गधे, मसाले रूप औषधियों से बना कर जीवित कर देते थे, वर्तमान काल से सात सौ वर्ष पूर्व तक ऐसे जैनी होते रहे, पुनः अब न जाने वे कहां चले गये, और शिष्य प्रशिष्यों को भी उक्त विद्याविषयक शिक्षा दे गये, या नहीं। (जैन तत्वादर्श)।

और जैन तत्वादर्श में आत्माराम लिखते हैं कि

६० वर्ष के अनुमान हुये तो हेमचंद्राचारी जैनी ने राजा कुमारपाल को एक मकान के अंदर २४ तीर्थङ्कर जीवत बैठे दिखाकर जैनी बनाया (देखो तत्वादर्श ३०९)

समीक्षक—भला जिन आदिनाथादि को जैनी असंख्य वर्ष हुये बताते हैं और कहते हैं कि मुक्तिशिला पर जा बैठे उनको शिला छोड़कर फिरगर्भ धारण करना पड़ा होगा क्यों कि शरीर बिना गर्भ के उतपन्न नहीं हो सक्ता मालूम होता है कि उन तीर्थङ्करों ने गर्भ के दुख सहन करने से एक राजा को जैनी बनाने का सुख अधिक समझा, जिस तरह अविवेकी माता पिता निज संतान पैदा करने के लिये आज कल बोहत पाप कर बैठते हैं, और बड़े कड़े घोर कष्ट सहन करते हैं ॥

और जैन तत्वादर्श पृष्ठ ३६० मे आत्माराम इन चौदह (१४) व्यापारों की वावत कहता है कि जो श्रावक की जीविका न चले तब करले:—

(१) कोपले बना कर या भाड़ से चने भूनकर इत्यादि।
(२) वनकर्म। याने हरे वृक्ष काटना॥ (३) साडी कर्म। याने सवारी चलाना॥ (४) भाडी कर्म। याने दलाली (या भाड़रवाना) या भाड़ा करना॥ (५) फोड़ी कर्म। याने पृथिवी या पर्वतादि फोड़ना। (६) दांत या पक्षीपशू के हाड़ कलेजा गाय के अंगोपांग चर्मादि॥
(७) लाख का बचना। (८) मद्य मांस आदि का बचना (जैनयों ने मद्य मांसादि को रस माना है याने घृत,तेल

आदि के बराबर) ॥ (९) स्त्री या बालक पशुपक्षी आदि। (१०) तेल निकालना ॥ (११) बैल घोड़ा खस्सी करना या पुलिस की नोकरी आदि (मालूम होता है कि यह रवाज भी जैनीयों से चलाहै)। १२) विष याने ज़हर॥ (१३) अग्नी लगाना॥ (१४) खेत मे पाणि देना या वृक्षोंमेंपाणि देना। (१५) असतीपोषण, याने जीवों की पालना करना इत्यादि

इससे साफ़ प्रकट है किपहले जैनी मद्य मांस बेचते अर खाते थे क्योंकि जो जैनियों को अजीवका न हो तो अब भी कर सकते हैं और मांस मद्य घी और खांड़ तथा लूण के बराबर है तो फिर इन्से क्या परेहेज़ है जैसा कसाई की दुकान करना वैसा गुड़ शक्कर घी खाड़ तेल बेचना तथा खाना तथा मद्य पीना मद्य मांस का प्रचार पहले जैनियों होने चलाया है क्योंकि संख हाड है उस को जैनचक्रवर्त लाज़मी बताता है जब हड्डी मूंह मे लेकर चसोड़ते हैं तो मांस से क्योंकर बच सकते है इत्यादि अब जैन का जिस जिस तरह रंग बदलता गया वह आगे द्वितीय भाग मे लिखेंगे॥

और जैनतत्वादर्श पृष्ठ ३१० मे लिखा है कि राजा कुमार पाल के मृतक माता पिता आकर कुमार पाल से कहने लगे की तू जैनमत मत छोड़ना जिस दिन से तू जैनी हुवा है हम को नर्क से स्वर्ग हुवा जो तू जैन धर्म त्यागेगा तो फिर हम नर्क को चलेजावेंगे।

समीक्षक—भला ये तो अच्छी युक्ती है की इस लेख

को देख बीहत से मूर्ख जैनी बनजावेंगे कि जैन धर्म में शामिल होने से दूसरे मरे हुवों के कुकर्म भी नष्ट होजाते हैं तो फिर ज़िन्दा जैनी तो चाहे जितने दुष्ट कर्म करो जैन मत के प्रभाव से उसे स्वर्ग ही मिलेगा क्योंकि राजा कुमारपाल हिंसा भी करता था हज़ारों मनुष्यों को उसने अपने हाथ से क़तल किया विषयी भी था तो उस के जैनी होने से माता पिता भी स्वर्ग को नर्ककुंड छोड कर चले गये तो उस को तो पाप ही क्योंकर दुख दे सकता है यदि यहां कोइ शंका करे कि हेमचन्द्राचारी ने यह मंत्रादि बल से झूंठी रचना रची तो तीर्थङ्करों को सच्चा क्यों मानते हो वो तो हेमचन्द्र से भी कइ दर्जे झूठे थे याने जिन के आचारी और पूर्वधारी जैन धर्म रूप छप्पर की टेवकी का यह हाल था तो न जाने उन के तीर्थङ्करों की जो जैनधर्म के शहतीर रहें उन की क्या दशा होगी और हमारी राय में तो तीर्थङ्कर हेमचन्द्राचार्य के अनुचर थे जो उस के हुक्म से डरते कांपते मुक्तशिला के बंधन को तुड़ा आ मोजूद हुये।

सिद्ध शिला में बड़ी तेज सुगंध है और कोमल है और वो शिला बीच मे से आठ योजन अर्थात ३२ हज़ार कोश या ८० हजार मील मोटी है और फिर कम होते मक्खी के पांख से भी पतली है उस के उपर सिद्धलाक है और प्रत्येक सिद्ध के शरीर की उच्चाई ३३३ धनुष ३२ अंगुल है अर्थात् ६६६ गज (जैन तत्वा दर्श पृष्ट २८०)

समीक्षक ! भला पत्थर में भी सुगंधताइ या कोमलताइ हो सकति है ये बात सपष्ट बता रही है कि केवलज्ञानीं बिलकुल अज्ञानी हुये हैं जिन्हे इतनी भी खबर नहीं की पत्थर में गंध नहीं हो सकती और वो सिद्धशिला क्या सिद्धमूली है जो मक्खी के पर से भी बारीक गावदुम सूली के सदृष सोती चली गइ और जब सिद्धों का शरीर सात २ सौ गज है तो वो उस शिला से कट कट कर गिरते होंगे या ससीम शिला सिद्ध लोक में अनन्त सिद्ध क्योंकर समा सकते हैं ये सब गप्पाष्टक किसी विक्षिप्त बुद्धी ने या मदोनमत ने पेली हैं ॥

अब यहां उत्तम जैनियों के दिन रात का नियम याने १ दिन तथा रात्री मे यमानक्रम कया करनी चाहिये इसमें गाथा प्रमाण है और १४ नियम हैं ॥

॥ चौदह नियम का विवर्ण ॥

जैन तत्वादर्श पृष्ट ३५७:—

(गाथा) । सचित्त दव्वविगइ, वाणह तंबोल वच्छ कुसमेसु
वाहण सयण विलेवण बंभ दिसि न्हाण भत्तेसु ॥ १४ ॥

(१) सचित परिमाण (२) द्रव्य नियम याने इतनी वार भोजन करना (३) विगय नियम याने विगयमं मद्य मांसादि १० दस है इन के खाने की तादाद के कितनी वार १ दिवस मे तथा रात्री में खावे या वारी वारी से (४) उपानह जूता या खड़ाव आदि गिनती की (५)तंबोल याने पान इतनी वार एक दिवस में खाना या रात्री में

(६) वस्त्र नियम याने इतने वस्त्र दिन तथा रात्री में पहनना (७) फूलों के गहने या माला दिन रात्री का नियम फूलों की शय्या तथा फूलों के इतने तकये फूलों के पखे फूलों का चदोवा फूलों का बंगला फूलोंकी जाली (८) वाहन याने सवारि दिनादि मे कितनि वार करे (९) शयन याने खाट पलग चौंकी छपरखट आदि (१०) विलेपन भोग के या कामदेव चेतन्न करने को जो वस्तु शरीर मे मालिश कीजाय (११) ब्रह्मचर्य का नियम करे कि दिन में इतनी वार स्त्री से विषय करना और रात्री में इतनी वार विषय करना (ये शब्द यातातथ्य जैन-तत्वा दर्श में हैं) (१२) चलने का नियम रात दिन मे इतना चलना (१३) स्नान का नियम इतनी वार न्हाना (१४) खाने का और पाणी का परमाण।

समीचक—इन लेखों से सपष्ट ज्ञात होता है कि पहले जैनी इन बातों को अंधाधुंद करते होंगे जब अंधाधन्द बेतादाद मांसादि भक्षण से अजीर्ण से मृत्यु को प्राप्त होने लगे या रोगग्रसित हुये जैसे अत्यंत विषय करने से इन्द्रीद्वारा रुधिर आने लगता है ज़्यादा फूलों के सूंघने से नजले का विकार होजाता है और सवारी वस्त्रादि में विशेष व्यय करने से दिवाला निकल जाता है इस लिये किसी ने पीछे से तादाद मुकरर करने के लिये अपनी सम्मती लिखी है किन्तु इस गाथा के लिखने वाला अत्यन्त विषइ मालूम होता है जो लिखता है कि १ दिन

में स्त्री से जितनी वार और १ रात्री में जितनी वार गोया रात दिन में चार२ तथा न्यूनाधिक एक २ वार से विशेष आज्ञा देता है यह तो जैनियों का ब्रह्मचर्य्य ... भोगभूमी की न्यूनता की अपे... माना है जैनी भाइ... विषय प्र... मार्ग पर चल... हैं इस कारण आ... जिस से आप और आप को ... हो मेरे इन लेखों से अपने चित्त पक्षपात से मत बिगाड़ना किन्तु मुझ को अपना हितैषी जानना और यदी कोई अक्षर जैन ग्रंथोंमें न्यूनाधिकलिखा गया हो अथवा प्रमाण लिखते समय भूल से किसी अन्य ग्रन्थ का नाम लिखा गया हो तो पत्र द्वारा मुझ को सूचना देना मैं पुनरावृत्ती में ठीक कर दूंगा प्रिय गणो ! कोई शब्द यदि आप साहबों को कठोर मालूम पड़े तो भी सूचना देना ताकि मैं उसपर विचार करूं ॥

और यह भी आप साहबों को ज्ञात रहे कि दिगाम्बर और सिताम्बर दोनों जैनशाखा के शास्त्रानकूल नाम सहित हैं अपने को पैकान लेना अगले भागों में जो समय मिला तो पृथक भी कुछ विचारनीय बातें लिखूंगा॥

शम्भुदत्त शर्मा,

आर्य्योपदेशक।

॥ विज्ञापन ॥

॥ छपने को तय्यार हैं ॥

...कृष्ण कृत)

...र ब्रह्मप्र

अन्य मत मतान्त

...चा और अन्त में उपरोक्त

रूपक द्वारा मोक्ष का सच्चा वैदिक उपाय दर्शाया गया

(२) प्राचीन समय में **पञ्च महा यज्ञों** का अतीव प्रचार

वर्तमान समय में उनका सर्वतः अभाव ॥

(३) **ब्रह्मयज्ञ,** इसमें अनेक विषयों का उत्तम रीति से वि...

किया गया है ॥

(४) **मेला फल्गु** अर्थात् सितम्बर १८०३ में इस मेले के ...

सर पर वैदिक धर्म का प्रचार और पौराणिक पण्डितों

साथ कई शास्त्रार्थ और उनका परिणाम ॥

(५) आर्य्यसमाज **पूँडरी के तृतीय वार्षिकोत्सव** का वि...

वृतान्त और वक्ताओं के उपदेश व व्याख्यान ॥

(६) पं॰ शम्भुदत्त कृत छोटे २ ट्रैक्ट जिन में पुराणों की ...

(असम्भव बातों) का खण्डन एक अपूर्वरीति से कियागय...

रामकृष्ण अग्रवालाश्रम लाहौर